स्वाध्यायदोहन

વિનય !
સ્વાધ્યાયને ભૂલીશ
મા !!!

स्वाध्यायान्मा: प्रमदः

પૂંઠાપરનાં ચિત્રનો ટૂંકભાવ-
શ્રુતજ્ઞાનજલથી પૂર્ણ ગંભીર અપાર કુંડ;
વાચના પ્રચ્છના આદિ સ્વાધ્યાયરૂપ રેંટ;
સ્વાધ્યાયકારાએ શ્રુતજલનું દોહન-પ્રહાર આણવું;
શ્રુતજ્ઞાનજલથી ભવ્યજીવોરૂપ વનરાજીનો વિકાસ.

आचार्यदेवश्रीविजयदानसूरि-ग्रन्थमाला-ग्रन्थांक-(२०)

श्री स्वाध्याय-दोहनम्

[पूर्वकालीनश्रुतस्थविरमहापुरुषप्रणीतः
जिनस्तवादिस्वाध्यायसंग्रहः]

संपादकः—

पूज्यपाद परमशासनप्रभावक आचार्यदेवश्रीमद्
विजयरामचन्द्रसूरिविनेयाणुः मुनिकनकविजयः

खंभात (स्थंभतीर्थ) वास्तव्येन 'श्रेष्ठि श्री मुलचन्द डाह्याभाई दलाल' इत्यनेन स्वकीयधर्मपत्न्या विहितज्ञानपंचमीतप-आराधनाया स्मृत्यर्थं वितीर्णद्रव्यसहाय्येन

प्रकाशयित्री-आचार्यदेवश्रीविजयदानसूरि-ग्रन्थमाला.
गोपीपुरा, सुरत.

वि. सं. १९९६, वि. सं. २४६६, क्राइ. स० १९४०

मूल्यम्-द्वौ आणकौ

પ્રકાશકઃ—માસ્તર હીરાલાલ રણછોડદાસ
ઑ૦ સે૦ આચાર્યદેવ—
શ્રી વિજયદાનસૂરિ જૈનગ્રંથમાલા.
ગોપીપુરા—સુરત.

મુદ્રક—શા. ગુલાબચંદ લલ્લુભાઇ.
મુદ્રણસ્થાન—મહોદય પ્રી૦ પ્રેસ.
દાણાપીઠ, ભાવનગર.

પૂજ્યપાદ પરમ શાસનપ્રભાવક સિદ્ધાન્તમહોદધિ—

આચાર્યદેવ શ્રીમદ્ વિજયપ્રેમસૂરીશ્વરજી
મહારાજ.

શ્રી મહોદય પ્રેસ–ભાવનગર.

નિવેદન—

સ્વર્ગીય સાધુચરિત પૂજ્યપાદ સકલાગમરહસ્યવેદી આચાર્યદેવ શ્રીમદ્ વિજયદાનસૂરીશ્વરજી મહારાજાના પુણ્યઅભિધાનથી સંકળાયેલ **'આચાર્યદેવ શ્રી વિજયદાનસૂરિ-ગ્રન્થમાલા'** આજે એક નૂતન ગ્રન્થને પ્રકાશિત કરે છે. અત્યાર અગાઉ આ ગ્રન્થમાલાએ નાનાં-મોટાં લગભગ ઓગણીસ ગ્રન્થરત્નો, વિદ્વાન જનસમાજની સમક્ષ રજૂ કર્યાં છે.

પ્રસ્તુત ગ્રન્થ, ગ્રન્થમાલાના વીસમા ગ્રન્થ તરિકે આજે પ્રસિદ્ધિને પામે છે. એ રીતિએ આ ગ્રન્થમાલા ધીરે ધીરે પણ મક્કમ પગલે પોતાના કાર્યક્ષેત્રમાં પ્રગતિ કરી રહી છે. કેવલ શ્રુતજ્ઞાનની ભક્તિના માર્ગે શક્તિ અને સાધનની અનુકૂળતા મૂજબ પ્રયાણ કરવાને ગ્રન્થમાલા ઇચ્છે છે.

ગ્રન્થમાલા હમણાં જ જન્મવા પામી છે. સાધન કે સામગ્રી સ્થાયીરૂપે ગ્રન્થમાલા પાસે નથી. છતાંયે પૂજનીય પરમગુરુદેવશ્રી અને તેઓશ્રીના શાસનપ્રભાવક શિષ્યસમુદાયના પુણ્યપ્રભાવે ગ્રન્થ-માલાનું કાર્ય આગળ વધે છે.

ખંભાતનિવાસી મુલચંદ ડાહ્યાભાઇ દલાલે (મુંબઈ) પોતાનાં ધર્મપત્ની શ્રીમતી સમરતબેનના જ્ઞાનપંચમી તપની આરાધનાની

ઉજવણી નિમિત્તે, આ ગ્રન્થના પ્રકાશનકાર્યને અંગેનું સઘલુંયે ખર્ચ ઉદારભાવે આપેલ છે. તે માટે સાચેજ તેઓની શ્રુતજ્ઞાનની ભક્તિ અનુમોદનીય તેમજ અનુકરણીય છે.

ગ્રન્થના પ્રકાશનને અંગેની સંપૂર્ણ સહાય ગ્રન્થમાલાને મળેલ હોવાથી, આ પુસ્તકનું મૂલ્ય રાખવાની ઇચ્છા નથી-નહતી; પણ મૂલ્ય નહિ હોવાના કારણે લગભગ ભેટનાં પુસ્તકોનો ઓછોવત્તો દુરુપયોગ થવાની સંભાવના છે. એ ભયથી ઉગરવાને તેમજ અભ્યાસકવર્ગની માગણીને પહોંચી વળાય અને તેઓ તેના લાભને ઉઠાવી શકે એ વિગેરે કારણોથી પ્રસ્તુત ગ્રન્થનું મૂલ્ય નજીવું નાછૂટકે રાખવું પડયું છે.

આ ગ્રન્થના સંપાદન તેમજ પ્રકાશનકાર્યને અંગે મુદ્રણદોષ-જન્ય કે અજ્ઞાન-પ્રમાદદોષજન્ય જે ક્ષતિઓ રહેવા પામી હોય તે સર્વ ક્ષતિઓનું પરિમાર્જન વિદ્વાન વાચકવર્ગ કરશે, અને આ સ્વાધ્યાયગ્રન્થના પઠન-પાઠન દ્વારાએ શ્રી જિનભાષિત ધર્મની આરાધનાના માર્ગમાં આગળ પગલાં માંડશે. એજ ભાવના.

—પ્રકાશક

ફાલ્ગુન શુક્લા-પૂર્ણિમા
વી. સં. ૨૪૬૬, વિ. સં. ૧૯૯૬
ગોપીપુરા, સુરત.

॥ णमो वीयरायाणं सव्वण्णूणं ॥

पूर्वकथन–

स्वाध्यायधर्मनी महत्ता—

स्वाध्याय ए तपधर्मनी आराधनानुं महत्त्वपूर्ण अंग छे, प्रायश्चित्त आदि छ प्रकारना अभ्यन्तर तपधर्मना एक प्रकार तरिके स्वाध्यायनी गणना छे. स्वाध्याय विना तप-धर्मनी आराधना अखंडित रही शके तेम नथी. आत्मशुद्धि अने आत्मजागृतिना वातावरणने सरजाववामां स्वाध्यायनी अति आवश्यक्ता छे.

'सुष्ठु अध्ययनम्' ए स्वाध्याय शब्दनो व्युत्पत्तिगत भाव छे. आत्मपरिणामनी निर्मलता तेमज कठीन कर्मोनी निर्जरा माटे आ स्वाध्याय नामनो तपधर्म साचेज परम आलंबन छे. माटे ज तत्त्वज्ञानी पुरुषो, कल्याणकारी आराधक आत्माने एज मूजबनी हितशिक्षा पाठवी रह्या छे–के "स्वाध्यायान्मा प्रमदः–स्वाध्यायना मार्गने तुं भूल नहि"

कारणके स्वाध्याय विना सघलीये आत्मसाधना छाळपर लींपणनी जेम वास्तविक फलथी वन्ध्य छे.

बारेय प्रकारना तपधर्ममां ' स्वाध्याय '–तप आत्म-कल्याणने माटे परम आलंबन समान छे; परमज्ञानी पुरुषो स्पष्ट रीतीये स्वाध्यायधर्मनी महत्ताने आ शब्दोमां प्रतिपादे छे–

"बारसविहम्मि वि तवे सब्भिंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे ।
नवि अत्थि नवि अ होही, सज्झायसमं तवोकम्मं ॥ १ ॥"

[कुशळ पुरुषोए फरमावेल, बाह्य अने आभ्यन्तर बारेय प्रकारना तपने विषे, स्वाध्यायसमुं तपकर्म कोइ छे नहि अने थनार नथी.]

कारण के—

" सज्झायेण पसत्थं झाणं, जाणइ अ सव्वपरमत्थं ।
सज्झाये वट्टन्तो, खणे खणे जाइ वेरग्गं ॥ २ ॥"

[स्वाध्यायथी प्रशस्त–निर्मल ध्यान आवे छे, तेमज स्वाध्यायना योगे सर्व परमरहस्योनुं ज्ञान थाय छे, अने स्वाध्यायमां सदाकाल रमनार–आत्माराम जीव क्षणे क्षणे वैराग्यभावने पामे छे.]

अकारणवत्सल उपकारी महापुरुषो, स्वाध्यायधर्मनी महत्ताने अंगे आ रीतिये स्पष्ट प्रतिपादन करे छे, ते परमज्ञानी पुरुषोना आ प्रतिपादननी वास्तविकताने स्वीकारनार आराधक आत्माओ स्वाध्यायनी महत्ताने अवश्य समजी शके तेम छे.

स्वाध्यायधर्मना प्रकारो—

वाचना, प्रच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा, अने धर्मकथा ए मूजब, स्वाध्यायधर्मनी आराधनाना पांच मार्गो छे. आ पांचेय मार्गो, सामान्यरीतिये स्वाध्यायधर्मनी अखंडित साधनाने सारु परम आवश्यक छे. विधिपूर्वक आ मार्गोनी साधना, स्वाध्यायधर्मनी अणीशुद्ध आराधनानी साहायक छे.

एकन्दरे वाचना आदि, स्वाध्यायधर्मना भेदो, तपधर्मनी आराधनाना अंगसमा छे. एटलाज कारणे स्वाध्यायधर्मनी आराधनीय रीतिओरूप वाचना विगेरे पांचेय गणी शकाय तेम छे.

ज्यारे बीजी रीतिये स्वाध्यायधर्मना स्वरूपने स्पष्ट करता परस्पर विभक्तएवा स्वाध्यायना मूलगत त्रण भेदो छे, प्रार्थना, स्तवना, अने तत्त्वचिन्तन, ए त्रणेय प्रकारो स्वाध्यायधर्मना परमअंगो छे.

आ मूजबना त्रणेय स्वाध्यायोमां प्रार्थना नामनो स्वाध्याय ए, एकान्त हितवत्सल परमउपकारी गुणवान पुरुषोनी सेवामां, विनीतभावे आर्द्रतापूर्वकनी आजीजीसमान होय छे. आवा प्रकारनी प्रार्थना बेशक अभिलाषनुं एक रूपान्तर गणाय, छतांये निराशंसभावे श्रीवीतराग परमात्मानी सेवामां रजू करातो आ प्रार्थनाओ आत्मकल्याणनी प्राप्तिमां अलबत परम सहायक छे.

गुणवान पुरुषोना गुणोनी स्तवनारूप स्वाध्यायधर्मनो बीजो प्रकार छे. आराध्य पुरुषोना गुणोनी स्तुति द्वाराये, पोताना दुष्कृतोनी निन्दा–गर्हा, पण आ बीजा प्रकारना स्वाध्यायमां आवी जाय छे, पोतानी अधमतानुं पोताने भान थवा साथे, आराध्य पुरुषोनी उत्तमदशानी आछी पातळी स्मृति आ स्वाध्यायथी साधक आत्माने थाय छे, आना योगे साधक आत्माओ पोतानी साधनाने मार्गे खूबज सावध अने खबरदार बने छे. एकंदरे आत्मानी जागृतिने सारु आवा प्रकारना स्वाध्यायनी खास अगत्यता छे.

ज्यारे त्रीजा प्रकारनो स्वाध्याय, श्रीजिनशासनना परमरहस्यभूत तत्त्वोनी परिशीलनारूप छे, आवा प्रकारनी परिशीलनाना योगे हेय अने उपादेय पदार्थोनुं ज्ञान,

आराधक आत्माओने प्राप्त थाय छे, ए सम्यग्ज्ञानना योगे श्रीजिनकथित तत्त्वोनी श्रद्धा निर्मल बने छे, अने चारित्र-धर्मनी आराधनाना मार्गे पगला मांडी शकाय छे.

एटले सामान्यरीतिये स्वाध्यायधर्मना आ मूलभूत त्रणेय प्रकारो आत्मकल्याणना अभिलाषुक आत्माओ माटे सर्व प्रकारे स्पष्ट मार्गदर्शन आपे छे.

प्रस्तुत ग्रन्थनुं प्रकाशन—

प्रस्तुत '**स्वाध्यायदोहन**' ग्रन्थमां, स्वाध्यायधर्मना आ त्रणेय प्रकारोना विषयने प्रतिपादित करती कृतिओ, दोहन-संग्रहरूपे रजू करवामां आवी छे. केटलीक कृतिओ, प्रार्थना-रूप स्वाध्यायमां गणी शकाय तेम छे. ज्यारे केटलीक कृतिओ गुणस्तवना-आत्मनिन्दाना स्वाध्यायरूप छे. तेमज केटलीक कृतिओ श्री जैनशासनना परमरहस्योना परिशीलनरूप तत्त्वचिन्तवन स्वाध्यायमां आवे तेम छे.

आ ग्रन्थमांनी संस्कृत तेमज प्राकृतभाषाबद्ध पद्यमय कृति-रचनाओ, ए पूर्वकालीन श्रुतस्थविर महापुरुषोना ग्रन्थोमांथी यथामति-शक्ति चूंटी चूंटीने रजू करवामां आवेल छे, (जेने अंगेनो नाम-स्थान विगेरेनो निर्देश आ ग्रन्थमां अन्य स्थाने करवामां आव्यो छे.)

एक अवसरे ज्यारे श्रीत्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित ग्रन्थनुं पठन–पाठन थयुं, त्यारे तेमां आवतां अनेक प्रभुप्रार्थनारूप स्तवो वांचतां ए भावना थइ, के–' आवां आवां प्रार्थनारूप तेमज गुणस्तवादिरूप स्वाध्यायनी रचना–कृतिओनो एकाद अलग संग्रह थाय तो केवुं सारुं ? "

वी० सं० २४६५ वि० सं० १९९५ नी सालनुं अषाढ चातुर्मास, पूजनीय परमगुरुदेवोनी आज्ञा मूजब, मुंबइ लालबाग (भूलेश्वर) खाते थतां, मारी पूर्वोक्त भावनाने मूर्तरूप आपनारा अनुकूल संयोगो मने सांपड्या, जेना फल परिपाक स्वरूप, आ रीतिये प्रकाशनने पामनार आ ग्रन्थ छे.

आ प्रसंगे एक स्पष्टता करी दउ,–संपादन के संशोधन कार्यने अंगेनो मने तेवा प्रकारनो अनुभव नथी. प्रस्तुत ग्रन्थनुं संपादन कार्य में प्रथम ज हाथ धरेल छे. संपादन–संशोधन विषयनो मारो आ अनुभव नवो छे. कोइपण ग्रन्थनुं संशोधन विगेरेनुं कार्य ए अति अगत्यनी जुवाबदारी भरेलुं होय छे. खूब तकेदारी, सतत अप्रमत्तशीलता तेमज बहुश्रुतता ए त्रणेयना सुमेळे ग्रन्थनुं संपादनकार्य सफल अने संतोषप्रद बनी शके छे.

जो के-प्रस्तुतग्रन्थनुं संपादन, तेवी रीतिये सफल तेमज संतोषप्रद बन्युं छे, एम कहेवानी धीट्टाइ हुं नज करी शकुं. कारण के मारी अल्पशक्ति अने खामीओनो मने ख्याल छे. छतांये हुं कहीश के—सामान्यरीतिये आ ग्रन्थना संपादन–संशोधनकार्यमां शक्ति अने स्थिति मूजबनी खबरदारी राखवामां आवी छे. आवश्यक टीप्पणो गुजराती भाषामां परिशिष्ट तरिके रजू करवामां आव्यां छे. तेमज बीजी पण शक्य काळजी रखाइ छे.

अपूर्णताओ जरुर छे, क्षतिओ नजरे चढे तेवी छे, जरुरी भाषाटीप्पणो करवा पडतां मूकाया छे. आ बधुंये हुं जाणु छुं, पण शक्तिमूजब में आमां प्रयत्न कर्यो छे. मारा आ प्रयत्नमां मने अवसरे अवसरे सहाय आपनार मुनिराज श्री **सुबुद्धिविजयजी** महाराजश्रीने मारे आ प्रसंगे अवश्य याद करवा जोइए.

वळी मारा परमोपकारी आराध्यपाद परमगुरुदेवो—पूज्यपाद परमोपास्य सुगृहीतनामधेय सिद्धान्तमहोदधि परम गुरुदेव आचार्य महाराज श्रीमद् **विजयप्रेमसूरीश्वरजी** महाराजा तेमज पूज्यपाद परमशासनप्रभावक व्याख्यानवाचस्पति गुरुदेव आचार्य महाराज श्रीमद् **विजयरामचन्द्र-**

सूरीश्वरजी महाराजाने हुं केम भूली शकुं? कारण के—जेओनी अस्सीम कृपा-करुणादृष्टिना योगे मारा जेवो अल्प-दीन-साधारण पण आजे श्रीवीतराग परमात्माना धर्ममार्गे खोडातो खोडातो पण गति करी रह्यो छे.

शक्तिमूजब जे कांइ, दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप-रत्नत्रयीनी आराधना मारा जीवनमां थती होय तो ते सघळोये प्रभाव अकारणवत्सल ते परमोपकारी गुरुदेवोनो छे.

प्रान्ते-प्रेसदोष के अज्ञान-प्रमादजन्य जे कांइ स्खलनाओ आ ग्रन्थमां रहेवा पामी होय तेनुं परिमार्जन करी, स्वाध्यायरत वाचकवर्ग, पूर्वकालीन श्रुतस्थविर महापुरुषोनी आ स्वाध्याय कृतिओना वाचन-मनन-परिशीलरूप स्वाध्यायपाठथी ध्यानना अनलनी चीणगारीओने प्रकटावो अने दुष्कृत-कर्ममलना पूंजने प्रजाळो—एज अभिलाषा.

वीरसं. २४६६, वि.सं. १९९६
फाल्गुन शुक्ला-पंचमी,
ता. १४-३-४० गुरुवार
अंधेरी-मर्जबान रॉड

मुनि कनकविजय

પૂજ્યપાદ પરમ શાસનપ્રભાવક વ્યાખ્યાનવાચસ્પતિ—

આચાર્યદેવ શ્રીમદ્ વિજયરામચન્દ્ર સૂરીશ્વરજી મહારાજ.

શ્રી મહોદય પ્રેસ—ભાવનગર.

आवश्यक विषयनोंध

अध्याय-प्रथम-(१)

विषय-	पृष्ठ-
श्री आदिनाथ आदि चोवीस तीर्थंकरोना स्तवो	१-५५; १ थी ६९,
श्री नन्दनमहामुनिनी आराधना;	६९-७३

ग्रन्थ-	ग्रन्थकर्त्ता-
श्रीत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र ...	कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्रसूरीश्वरजी म०

अध्याय-द्वितीय-(२)

विषय-	पृष्ठ-
श्री वीतराग स्त्रोत्रना वीश प्रकाश...	७४-९९
श्री महादेव स्तोत्र	९९-१०४
श्री अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका	१०४-१०८
श्री अयोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका	१०८-११२

रचयिता–

पू० कलिकालसर्वज्ञ–भगवान् श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म०

अध्याय–तृतीय–(३)

विषय–	पृष्ठ–
श्री नवपद्स्वरूप दर्शन....	११३–११४
श्री ऋषभजिनेश्वर स्तव (२)	११५–११७
श्री नवपद् स्वरूपदर्शन....	११७–११८
श्री महामुनि स्तव	११८–११९
श्री नवपद्विषयक देशना	१२०–१२३
श्री नवपदाराधनविधि	१२३–१२४
श्री नवपद् स्तवन	१२४–१२५
श्री नवपद स्वरूपदर्शक स्तव	१२५–१३५
आत्मनि नवपद्मयता....	१३६–१३७

ग्रन्थ–	ग्रन्थकर्ता–
सिरि सिरिवालकहा	पूजनीय सूरिदेव श्रीरत्नशेखरसूरिजी.

विषय–	पृष्ठ–
श्री परमात्म–स्तवन–(२)	१३७–१४४

ग्रन्थ–	ग्रन्थ कर्ता–
श्रीउपमीति भवप्रवंचा कथा	पू० श्रीसाधुचरित सिद्धर्षिगणि

विषय–			पृष्ठ–
श्री धर्मस्वरूप दर्शनम्...	....	...	१४४–१४६
श्री तत्त्वत्रयी स्वरूप	...	....	१४६–१५०
श्री युगादि जिनस्तवः	...	...	१५०–१५२
श्री अष्टविधकर्मस्वरूप...	....	....	१५२–१५५
श्री पार्श्वनाथ जिनस्तव....	...	....	१५५–१५६
षड्विधा अन्तिमाराधना...	....	....	१५७–१६०
श्री पार्श्वनाथजिनस्तवः	....	....	१६१–१६२
श्री धर्माराधनशिक्षा	...	....	१६२–१६८

ग्रन्थ–	ग्रन्थकर्ता–
श्री पार्श्वनाथचरितम्	पूजनीय आचार्यदेव श्री भावदेवसूरि

श्री हृदयप्रदीपषट्त्रिंशिका	...	....	१६८–१७२

(कर्ता— प्राचीन महर्षि)

श्री साधारणजिनस्तवः	...	....	१७३–१७७

(कर्ता— परमार्हत श्री कुमारपालभूपाल)

श्री लोडणपार्श्वनाथ जिनस्तवः १७७–१७८

(कर्ता— श्रीऋद्धिचन्द्रमुनि)

श्रीजिनप्रतिमास्तोत्रम्, कर्ता–श्रीहरिभद्रसूरिवर...१७८–१७९

श्री आदिजिन स्तवः (१–२) १७९–१८१

कर्ता—(१) उपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी महाराज,

(२) उपाध्याय श्रीमद् विनयविजयजी महाराज.

श्री भूतवर्तमानभाविजिनस्तवः १८१–१८३

(कर्ता— श्री श्रीचन्द्रसूरि)

श्री गौतमस्वामिस्तवः १८३–१८४

(कर्ता— श्री देवानन्दसूरि)

श्री चतुर्विंशति जिनस्तवः १८५–

(कर्ता— प्राचीन महर्षि)

परिशिष्ट—१–२

ધર્મશ્રદ્ધાલુ—

—: ખંભાતનિવાસી મુલચંદ ડાહ્યાભાઈ દલાલ—મુંબઈ. :—

शुद्धि-सूचन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	५	रुद्यानैरिव,	रुद्यानै-रिव
४	११	यथा समयमेव	यथासमयमेव
७	८	अबोद्धृणामिव	अबोद्धणामिव
८	३	पद्माकर ! दिवाकर !	पद्माकरदिवाकर !
८	८	भव्यजीव मनो	भव्यजीवमनो
९	१२	ऽसमोह्ययम्	ऽसमो ह्ययम्
१०	१२	मूढानामे-क	मूढाना-मेक
११	८	दुखार्तै	दुःखार्तैः
१२	१	ब्रजमपि	वज्रमपि
१२	९	ऽऽददतेमनो	ऽऽददते मनो
१२	११	पापद्रुन्मूलने	पापद्रून्मूलने
१५	८	राप्यस्मै	रप्यस्मै
१५	१३	पद्रूयति	पद्रूयते
१६	१२	ऽपिजगत्पते !	ऽपि जगत्पते !

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२	१२	व्याधि स्तस्येव	व्याधितस्येव
२३	९	क्षाणात्	क्षणात्
२४	१२	उर्मयोऽपि	ऊर्मयोऽपि
२५	४	र्नित्य संक्रांता	नित्यसंक्रांता
२५	४	निर्वृत्तिकारणम्	निर्वृतिकारणम्
२७	१	जगत्त्र्या	जगत्त्रय्या
३४	२	न्यस्तान्यमुनि	न्यस्तान्यमूनि
३५	१४	घाती–	घाति–
३८	३	भृंगी–	भृंगी–
४१	१४	संसारिकं	सांसारिकं
४५	१४	विजृभितं	विजृम्भितं
४७	१४	यैदृष्टोऽसि	यैर्दृष्टोऽसि
५१	४	निःसंगत्त्वा–	निःसंगत्वा–
६४	४	घातिनि	घातीनि
६७	१२	षैक गन्ध–	षैकगन्ध–
६८	१०	ज्येष्टानां	ज्येष्ठानां
७३	११	त्यज्याम्यहम्	त्यजाम्यहम्
८२	६	न्निन्हुवते	न्निह्नुवते

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८२	९	कामरागस्नेह	कामरागस्नेह–
८६	१४	रवतः	रत्नतः
८७	५	–मवि	–मपि
९२	१२	गरिष्टो	गरिष्ठो
९७	१	वीर०	वीत०
१०२	३	यद्मावती	पद्मावती
१०६	४	बन्ध्या	वन्ध्या
१०८	१२	–स्नात–	–स्नात–
११३	१०	घणकम्म बंधण–	घणकम्मबंधण–
१२२	१०	तत्तभायरि–	तत्तमायरि
१२८	२	जं पंच विहा	जं पंचविहा
१३६	१०	झाणलील–	झाणलीण–
१३८	११	ज्ञानाध्य कारकः	सानाथ्यकारकः
१३८	१२	मुररी कृत्य	मुररीकृत्य
१४०	१५	भूवनभूषण !	भुवनभूषण !
१४१	३	गुरूः	गुरुः
१४१	१०	विकसंत्येव	विकसत्येव
१४१	१७	किभियं	किमियं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४३	७	कारूणिकस्य	कारुणिकस्य
१४३	१३	कारूण्यं	कारुण्यं
१४५	१	गतशिर्षो	गतशीर्षो
१४७	७	यादक्	यादृक्
१४८	३	तद्द्धेयं	तद्ध्येयं
१५१	१	सद्ग्रन्ध–	सद्ग्रन्ध–
१५३	८	–र्नीचै–	–र्नीचै–
१५५	४	सदा	यदा
१५५	८	सुतवीभवत्	सुखी भवेत
१६५	२	मत्त्वा	मत्वा
१७३	६	प्रभुणा–	प्रभूणा–
१७३	९	तवस्तवेन	तव स्तवेन

॥ ॐ असिआउसाय नमः ॥

॥ शा० प्र० आचार्यदेव श्रीमद्विजयदानसूरीशेभ्यो नमः ॥

स्वाध्याय-दोहन-

—सं० मुनि कनकविजय.

अध्याय—

(१)

[त्रिषष्टि-पर्वान्तर्गत-जिनस्तवादि:]

१

*श्री आदिनाथ-जिनस्तवः

तुभ्यं नमस्तीर्थनाथ ! सनाथीकृतविष्टप ! ।
कृपारससरिन्नाथ ! नाथ ! श्रीनाभिनंदन ! ॥ १ ॥

मत्यादिभिस्त्रिभिर्ज्ञानैः, सहोत्थैर्नाथ ! शोभसे ।
नंदनादिभिरुद्यानैरिव, मेरुमहीधरः ॥ २ ॥

देवेदं भारतं वर्षं, दिवोऽप्यद्याऽतिरिच्यते ।
त्रैलोक्यमौलिरत्नेन, यदऽलंक्रियते त्वया ॥ ३ ॥

असौ त्वज्जन्मकल्याण–महोत्सवपवित्रितः ।
आसंसारं जगन्नाथ !, वंद्यस्त्वमिव वासरः ॥ ४ ॥

नारकाणामपि सुखं, जज्ञे त्वज्जन्मपर्वणा ।
अर्हतामुदयः केषां, न स्यात्संतापहारकः ॥ ५ ॥

जंबूद्वीपस्य भरत–क्षेत्रे नष्टो निधानवत् ।
त्वदाऽऽज्ञाबीजकेनाऽतः, परं धर्मः प्रकाशताम् ॥ ६ ॥

त्वत्पादौ प्राप्य संसारं, तरिष्यंति न केऽधुना ? ।
अयोऽपि यानपात्रस्थं, पारं प्राप्नोति वारिधेः ॥ ७ ॥

---

* भगवतो जन्मसमये सौधर्मसभायां शक्रेन्द्रसंदृब्धः ।

कल्पवृक्ष इवाऽवृक्षे, नदीस्रोतो मराविव ।
भगवन्नवतीर्णोऽसि, लोकपुण्येन भारते ॥ ८ ॥

२

*श्री आदिनाथ-जिनस्तवः

नमस्तुभ्यं जगन्नाथ !, त्रैलोक्यांऽभोजभास्कर ! ।
संसारमरुकल्पद्रो !, विश्वोद्धरणबांधव ! ॥ १ ॥

वंदनीयो मुहूर्त्तोऽयं, यत्र ते धर्मजन्मनः ।
अपुनर्जन्मनो जन्म, दुःखच्छिद्विश्वजन्मिनाम् ॥ २ ॥

युष्मज्जन्माऽभिषेकांऽभः-पुरैराप्लाविताऽधुना ।
अयत्नक्षालितमला[1], सत्या रत्नप्रभा प्रभो ! ॥ ३ ॥

मनुष्याः खलु ते धन्या, ये त्वां द्रक्ष्यंत्यहर्निशम् ।
यथा समयमेव त्वां, द्रष्टारः कीदृशा वयम् ? ॥ ४ ॥

भरतक्षेत्रजंतूनां, मोक्षमार्गोऽखिलः खिलः[2] ।
त्वया नूतनपांथेन, नाथ ! प्रकटयिष्यते ॥ ५ ॥

साऽस्तु तावत्तव सुधा—सध्रीची धर्मदेशना ।
त्वद्दर्शनमपि श्रेयो, विश्राणयति जन्मिनाम् ॥ ६ ॥

---

* मेरौ जन्माऽभिषेकस्नात्रादऽनु शक्रेण संस्तुतः ।

न कश्चिदुपमापात्रं, भवतो भवतारक ! ।
ब्रूमस्त्वत्तुल्यमेव त्वां, यदि ते तर्हि का स्तुतिः ? ॥ ७ ॥
नाऽस्मि वक्तुमलं नाथ!, सद्भूतानपि ते गुणान् ।
स्वयंभूरमणांभोधेर्मातुमंभांसि कः क्षमः ? ॥ ८ ॥

३

*श्री आदिनाथ-जिनस्तवः

गुणांस्तव यथाऽवस्थान्, वयं वक्तुमनीश्वराः ।
स्तुमस्तथाऽपि प्रज्ञा हि, त्वत्प्रभावाद्भृशायते ॥ १ ॥
त्रसस्थावरजंतूनां हिंसायाः परिहारतः ।
स्वामिन्नभयदानैक–सत्रिणे भवते नमः ॥ २ ॥
नमस्तुभ्यं मृषावाद–परित्यागेन सर्वथा ।
पथ्यतथ्यप्रियवचः—सुधारसपयोधये ॥ ३ ॥
भगवन्नदत्तादान–प्रत्याख्यानखिलाऽध्वनि[3] ।
प्रथमायाऽध्वनीनाय[4] नमस्तुभ्यं जगत्पते ! ॥ ४ ॥
अखंडितब्रह्मचर्य–महातेजोविवस्वते ।
भगवन्मन्मथध्वांत–मथनाय नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥

---

* प्रभोर्दीक्षाग्रहणादऽनन्तरं शक्रेन्द्रसंकलितः ।

सर्वमेकपदे नाथ !, पृथिव्यादिपरिग्रहं ।
पलालवत्त्यक्तवते तुभ्यं मुक्त्याऽऽत्मने नमः ॥ ६ ॥

तुभ्यं नमः पंचमहा–व्रतभारककुद्मते[5] ।
संसारसिंधुतरण–कमठाय[6] महात्मने ॥ ७ ॥

महाव्रतानां पंचाना–मिव पंचाऽपि सोदराः ।
बिभ्रते समितीस्तुभ्य–**मादिनाथ** ! नमोनमः ॥ ८ ॥

आत्मारामैकमनसे, वचःसंवृत्ति[7]शालिने ।
सर्वचेष्टानिवृत्ताय, नमस्तुभ्यं त्रिगुप्तये ॥ ९ ॥

४

*श्री आदिनाथ–जिनस्तवः

स्वामिन् ! क्व धी–दरिद्रोऽहं, क्व च त्वं गुणपर्वतः ।
अभिष्टोष्ये तथापि त्वां, भक्त्याऽतिमुखरीकृतः ॥ १ ॥

अनंतैर्दर्शन–ज्ञान–वीर्याऽऽनंदैर्जगत्पते ! ।
रत्नै रत्नाकर इव त्वमिहैको विराजसे ॥ २ ॥

---

* कैवल्यज्ञानप्राप्त्यनन्तरं सौधर्मेन्द्रकृतः ।

देवेह भरतक्षेत्रे चिरं नष्टस्य सर्वथा ।
धर्मस्याऽसि प्ररोहाय, बीजमेकं तरोरिव ॥ ३ ॥

अनुत्तरसुराणां त्वं, तत्रस्थानामिह स्थितः ।
वेत्सि छिनत्सि संदेहं, न माहात्म्याऽवधिस्तव ॥ ४ ॥

फलं त्वद्भक्तिलेशस्य, निवासः स्वर्गभूमिषु ।
यत्सुराणां समग्राणां, महर्द्धिद्युतिभास्वताम् ॥ ५ ॥

देव ! त्वद्भक्तिहीनानां तपांस्यतिमहांत्यपि ।
अबोद्धॄणामिव ग्रंथा-ऽभ्यासः क्लेशाय केवलम् ॥ ६ ॥

यस्त्वां स्तवीति यो द्वेष्टि, समस्त्वमुभयो स्तयोः ।
शुभाऽशुभं फलं किंतु, भिन्नं चित्रीयते हि नः ॥ ७ ॥

द्युश्रियापि न तोषो मे, नाथ ! नाथाम्यदस्ततः ।
भगवन् ! भूयसी भूया-त्त्वयि भक्तिर्ममाऽक्षया ॥ ८ ॥

५

*श्री आदिनाथ-जिनस्तवः

जयाऽखिलजगन्नाथ !, जय विश्वाऽभयप्रद ! ।
जय प्रथमतीर्थेश !, जय संसारतारण ! ॥ १ ॥

---

* समवसरणभुवि श्रीभरतनरेश्वरसंदृब्धः ।

अद्याऽवसर्पिणीलोक—पद्माकर ! दिवाकर ! ।
त्वयि दृष्टे प्रभातं मे, प्रनष्टतमसोऽभवत् ॥ २ ॥

भव्यजीव मनोवारि—निर्मलीकारकर्मणि ।
वाणी जयति ते नाथ !, कतकक्षोदसोदरा ॥ ३ ॥

तेषां दूरे न लोकाग्रं, कारुण्यक्षीरसागर ! ।
समारोहंति ये नाथ !, त्वच्छासनमहारथम् ॥ ४ ॥

लोकाऽग्रतोऽपि संसार–मग्रिमं देव ! मन्महे ।
निष्कारणजगद्बंधु–र्यत्र साक्षात्त्वमीक्ष्यसे ॥ ५ ॥

त्वद्दर्शनमहानंद–स्यंदनिष्यंदलोचनैः ।
स्वामिन् ! मोक्षसुखाऽऽस्वादः संसारेऽप्यनुभूयते ॥ ६ ॥

रागद्वेषकषायाद्यै, रुद्धं जगदरातिभिः ।
इदमुद्वेष्ट्यते[1] नाथ ! त्वयैवाऽभयसत्रिणा ॥ ७ ॥

स्वयं ज्ञापयसे तत्त्वं मार्गं दर्शयसि स्वयम् ।
स्वयं च त्रायसे विश्वं, त्वत्तो नाथामि नाथ[2] ! किम् ॥ ८ ॥

नानावस्कंदसंग्राम[3]–हतग्रामभुवो मिथः ।
मित्रीभूयेह तिष्ठंति, राजानस्तव पर्षदि ॥ ९ ॥

त्वत्पर्षद्यमायातः करटी करटस्थलीम् ।
करेण केशरिकरं, कृष्ट्वा कंडूयते मुहुः ॥ १० ॥

इतश्च महिषमिव, महिषोऽयं मुहुर्मुहुः ।
स्नेहतो जिह्वया मार्ष्टि, हेषमाणमिमं हयम् ॥ ११ ॥

लीलालोलितलांगूल, उत्कर्णो नमिताऽऽननः ।
घ्राणेन व्याघ्रवदनं, जिघ्रत्ययमितो मृगः ॥ १२ ॥

पार्श्वयोरग्रतः पश्चा–ल्ललंतं निजपोतवत् ।
अयं तरुणमार्जारः समाश्लिष्यति मूषिकाम् ॥ १३ ॥

अयं च निर्भयो भोगं, कुंडलीकृत्य कुंडली ।
अदभ्र[5]बभ्रोरभ्यर्णे, निषीदति वयस्यवत् ॥ १४ ॥

देव ! ये केचिदन्येऽपि, जीवाः शाश्वतवैरिणः ।
निर्वैरास्तेऽत्र[6] तिष्ठंति, त्वत्प्रभावोऽसमोह्ययम् ॥ १५ ॥

६

*श्री आदिनाथ–जिनस्तवः

देवैरप्यपरिज्ञेयगुणं कः स्तोतुमीश्वरः ?
त्वां स्तोष्यामस्तथापीश विलसद्बालचापलाः ॥ १ ॥

---

* अष्टापदपर्वते भरतभ्रातृभिः कृतः ।

तपस्यतामप्यऽधिकास्त्वां नमस्यंति ये सदा ।
वरिवस्यंति ये तु त्वां, योगिनामपि तेऽधिकाः ॥ २ ॥

नमस्यतां प्रतिदिनं, विश्वाऽऽलोकदिनेश्वर ! ।
धन्यानामवतंसंति[7], त्वत्पादनखरश्मयः ॥ ३ ॥

न किंचित्कस्यचित्साम्ना, बलाद्वा गृह्यते त्वया ।
त्रैलोक्यचक्रवर्ती त्वं, तथाऽप्यसि जगत्पते ! ॥ ४ ॥

स्वामिंस्त्वमेको जगतां, समं चेतस्सु वर्तसे ।
पीयूषदीधितिः[8] सर्व—जलाशय—जलेष्विव ॥ ५ ॥

त्वां स्तोता स्तूयते देव !, सर्वैस्त्वामर्चिताऽर्च्यते ।
त्वां नन्ता[9] नम्यते सर्वो, त्वयि भक्तिर्महाफला ॥ ६ ॥

त्वं देव दुःखदावाऽग्नि—तप्तानामेकवारिदः ।
मोहांऽधकारमूढानामे—कदीपस्त्वमेव हि ॥ ७ ॥

रोराणामीश्वराणां च, मूर्खाणां गुणिनामपि ।
साधारणोपकारी त्वं, छायाद्रुम[10] इवाऽध्वनि ॥ ८ ॥

७

*श्री आदिनाथ-जिनस्तवः

अवज्ञायाऽज्ञतां स्वस्य, सर्वज्ञ ! त्वां स्तवीम्यहम् ।
यन्मां मुखरयत्येषा, दुर्वारा भक्तिमानिता ॥ १ ॥

जयंत्यादिमतीर्थेश !, त्वत्पाद-नखदीप्तयः ।
वज्रपंजरतां[1] यांत्यो, भवाऽरित्रस्तदेहिनाम् ॥ २ ॥

देव ! त्वच्चरणांऽभोज-मीक्षितुं राजहंसवत् ।
धन्याः प्रतिदिनं दूरा-दपि धावंति देहिनः ॥ ३ ॥

घोरसंसारदुखार्तैः, शीतार्तैरिव भास्करः ।
शरणीक्रियसे देव !, त्वमेवैको विवेकिभिः ॥ ४ ॥

ये त्वां पश्यंति भगवन् !, नेत्रैरनिमिषैर्मुदा ।
परलोकेऽप्यनिमिषी[2]-भावस्तेषां न दुर्लभः ॥ ५ ॥

देव ! त्वद्देशनावाग्भि-र्याति कर्ममलो नृणाम् ।
क्षीरेण क्षोमवस्त्राणा-मिव मालिन्यमांजनम् ॥ ६ ॥

स्वामिन्वृषभनाथेति, जप्यमाना तवाऽभिधा ।
आलंबते सर्वसिद्धि-समाकर्षणमंत्रताम् ॥ ७ ॥

---

* श्री बाहुबलि-नरेश्वरेण-संकलितः ।

न व्रजमपि भेदाय, न शूलमपि हि छिदे ।
तेषां शरीरिणां नाथ!, येऽधित्वद्[3]भक्तिवर्मिता: ॥ ८ ॥

८

*श्री आदि-जिनस्तवः

त्वां जडोऽपि जगन्नाथ! युक्तमानी स्तवीम्यहम् ।
लल्ला अपि हि बालानां युक्ता एव गिरो गुरौ ॥ १ ॥

देव! त्वामाऽऽश्रयन् जंतु–र्गुरुकर्मापि सिध्यति ।
अयोऽपि हेमीभवति स्पर्शात्सिद्धरसस्य हि ॥ २ ॥

त्वां ध्यायंतः स्तुवंतश्च, पूजयतंश्च देहिनः ।
धन्याः स्वामिन्नाऽऽददतेमनोवाग्वपुषां फलम् ॥ ३ ॥

पृथ्व्यां विहरतः स्वामिन्नपि ते पादरेणवः ।
महामतंगजायंते, पापद्रुन्मूलने नृणाम् ॥ ४ ॥

नैसर्गिकेण मोहेन जन्मांधानां शरीरिणाम् ।
विवेकलोचनं नाथ! त्वमेको दातुमीशिषे ॥ ५ ॥

सुचिरं [4]चंचरीकंति ये भवत्पादपद्मयोः ।
तेषां न दूरे लोकाऽग्रं[5] मेर्वादि मनसामिव ॥ ६ ॥

---

* श्रीभरतनरेश्वरसंदृब्धः ।

देव ! त्वद्देशनावाग्भिर्गलंत्याऽऽशु शरीरिणाम् ।
कर्मपाशा जंबूफलानीव[6] वारिदवारिभिः ॥ ७ ॥

इदं याचे जगन्नाथ ! त्वां प्रणम्य मुहुर्मुहुः ।
त्वयि भक्तिस्त्वत्प्रसादादऽक्षयास्त्वब्धिवारिवत् ॥ ८ ॥

९

*श्री आदिनाथ-जिनस्तवः

अपि सर्वात्मना ज्ञातु-मशक्या योगिपुंगवैः ।
स्तुत्याः क्व ते गुणाः स्तोता क्वाऽहं नित्यप्रमद्वरः[7] ॥ १ ॥

तथापि नाथ स्तोष्यामि यथाशक्ति भवद्गुणान् ।
दीर्घाऽध्वनि व्रजन् खंजः[8] किं केनाऽपि निवार्यते ? ॥ २ ॥

भवदुःखाऽऽतपक्लेश--विवशानां शरीरिणाम् ।
छत्रच्छायायमानांऽघ्रि[9]–च्छाय ! त्रायस्व नः प्रभो ! ॥ ३ ॥

कृतार्थस्त्वं स्वयं नाथ ! कृते लोकस्य केवलम् ।
एवं विहरसे स्वार्थायोद्याति[10] किमऽहस्करः ! ॥ ४ ॥

---

* शक्रेन्द्रसंकलितः ।

मध्यंदिनाऽऽदित्य इव त्वयि प्रभवति प्रभो ! ।
संकुचत्यभितः कर्म देहच्छायेव देहिनाम् ॥ ५ ॥

तिर्यंचोऽपि हि धन्यास्ते ये त्वां पश्यंति सर्वदा ।
भवद्दर्शनवंध्यास्तु त्रिविष्टपसदोऽपि न ॥ ६ ॥

प्रकृष्टेभ्यः प्रकृष्टास्ते भविकास्त्रिजगत्पते ! ।
एको हृदयचैत्येषु येषां त्वमऽधिदेवता ॥ ७ ॥

एकं याचे भवत्पादान् ग्रामाद्ग्रामं पुरात्पुरम् ।
विहरन्नपि मा जातु विहासीर्हृदयं मम ॥ ८ ॥

१०

*श्री आदिनाथ-जिनस्तवः

कुम्भैर्मानमिवांऽभोधेः स्तवनं मादृशैस्तव ।
स्तोष्यामि तदपि स्वामिन्! भक्त्या ह्यस्मि निरंकुशः॥ १ ॥

त्वदाऽऽश्रितास्तु त्वत्तुल्या भवंति भविनः प्रभो ! ।
यांति दीपस्य संपर्का-द्वर्त्तयो[1]ऽपि हि दीपताम् ॥ २ ॥

माद्यदिंद्रियदंतींद्राऽ[2]मदीकरणभेषजम् ।
तव स्वामिन् ! विजयते शासनं मार्गशासनम् ॥ ३ ॥

---

* भरतचक्रिवरसंस्तुतः ।

हत्वा घातीनि कर्माणि शेषकर्माण्युपेक्षसे[3] ।
भुवनानुऽग्रहायैव मन्ये त्रिभुवनेश्वर ! ॥ ४ ॥

पादलग्नास्तव विभो ! लंघंते भविनो भवम् ।
उदन्वंतं[4] पक्षिराज—पक्षमध्यगता इव ॥ ५ ॥

जयत्यनंतकल्याण—द्रुमोल्लासनदोहदम्[5] ।
विश्वमोहमहानिद्रा—प्रत्यूषं दर्शनं तव ॥ ६ ॥

त्वत्पदांऽभोजसंस्पर्शाद्दीर्यंते कर्म देहिनाम् ।
इंदोर्मृदुभिराप्यस्तैर्दंतिदंताः[6] स्फुटंति हि ॥ ७ ॥

वृष्टिर्वारिधरस्येव मृगांकस्येव चंद्रिका ।
जगन्नाथ ! प्रसादस्ते सर्वसाधारणः खलु ॥ ८ ॥

११

*श्री आदिनाथ-जिनस्तवः

त्वत्प्रभावात्स्तवीमि त्वामऽप्राज्ञोऽपिजगत्पते ! ।
शशिनं पश्यतां दृष्टि-र्मंदापि हि पटूयति ॥ १ ॥

---

* भरतनरेश्वरसंदृब्धः ।

मोहांऽधकारनिर्मग्न—जगदाऽऽलोकदीपकम् ।
आकाशवदनंतं ते स्वामिन् ! जयति केवलम् ॥ २ ॥

प्रमादनिद्रामग्नानां नाथ ! कार्येण मादृशाम् ।
एवं गताऽऽगतानि त्वं करोष्यर्क इवाऽसकृत् ॥ ३ ॥

जन्मलक्षार्जितं कर्म त्वदालोकाद्विलीयते ।
कालेन दृषदीभूतमप्याज्यं वह्निना द्रवेत् ॥ ४ ॥

एकांतसुखमातोऽपि साध्वी च सुखदुःखमा ।
यत्र कल्पद्रुमेभ्यस्त्वं विशिष्टफलदोऽभवः ॥ ५ ॥

समस्तभुवनेशेदं भुवनं भूषितं त्वया ।
राज्ञा पुरीव ग्रामेभ्यो, भुवनेभ्यः प्रकृष्यते ॥ ६ ॥

पिता माता गुरुः स्वामी यत्सर्वेऽपि न कुर्वते ।
एकोऽप्यनेकीभूयेव त्वं हितं विदधासि तत् ॥ ७ ॥

निशा निशाकरेणेव हंसेनेव महासरः ।
वदनं तिलकेनेव शोभते भुवनं त्वया ॥ ८ ॥

१२

*श्री अजितनाथ-जिनस्तवः

जय त्रिभुवनाधीश !, जय विश्वैकवत्सल ! ।
जय पुण्यलतोद्भेद-नवांबुद ! जगत्प्रभो ! ॥ १ ॥

स्वामिन् ! विमानाद्विजया-दवतीर्णोऽसि भूतले ।
इदं जगत् प्रीणयितुं, सरिदोघ इवाऽचलात् ॥ २ ॥

बीजं मोक्षद्रुमस्येव, ज्ञानत्रितयमुज्ज्वलम् ।
स्वामिन्नाऽऽजन्मसिद्धं ते, शीतलत्वमिवांऽभसः ॥ ३ ॥

ये त्वां त्रिभुवनाधीश !, धारयंति सदा हृदि ।
संमुखीनाः श्रियस्तेषा-मादर्श[7]प्रतिबिंबवत् ॥ ४ ॥

उल्बणै[8]र्बाध्यमानानां, कर्मरोगैः शरीरिणाम् ।
दिष्ट्या त्वमऽगदंकारः, प्रतीकारकरोऽभवः ॥ ५ ॥

त्वद्दर्शनसुधासारा-स्वादस्य त्रिजगत्पते ! ।
मरुपांथा[9] इव वयं, न तृप्यामो मनागपि ॥ ६ ॥

---

* जन्माऽभिषेकसमये मेरौ शक्रेन्द्रसंदब्धः ।

रथः सारथिनेवाऽद्य, कर्णधारेण नौरिव ।
पथा व्रजतु लोकोऽयं, त्वया नेत्रा जगत्पते ! ॥ ७ ॥

त्वत्पादपद्मशुश्रूषा–समयाऽधिगमेन नः ।
भगवन्निजमैश्वर्यं, कृतार्थमधुनाऽभवत् ॥ ८ ॥

१३

*श्री अजितनाथ–जिनस्तवः

भगवन्नजितस्वामिन् !, विजयस्व जगद्गुरो ! ।
त्रैलोक्यपद्मिनीषंड–विकासनदिवाकर ! ॥ १ ॥

मतिश्रुतावधिमनः–पर्यंयैर्नाथ ! शोभसे ।
ज्ञानैश्चतुर्भिरुद्दामै–रर्णवैरिव मेदिनी ॥ २ ॥

त्वं हेलयापि कर्माणि, प्रोन्मूलयितुमीशिषे ।
अयं परिकरस्तु ते, लोकानां मार्गदर्शकः ॥ ३ ॥

भगवन्नंतरात्मा त्वं, मन्येऽहं सर्वदेहिनाम् ।
तेषामऽद्वैतसौख्याय, यतसे कथमन्यथा ? ॥ ४ ॥

हित्वा कषायान् मलवत्–कृपाजलपरिप्लुतः ।
त्वमेवाऽसि विशुद्धात्मा, निर्लेपः पद्मपत्रवत् ॥ ५ ॥

---

* प्रभोर्दीक्षाग्रहणानन्तरं सगरनरेशकृतः ।

राज्येऽपि न्यायनिष्ठस्य, न स्वो न च परस्तव ।
प्राप्ताऽवसरमेतत्तेऽधुना, साम्यं किमुच्यते ॥ ६ ॥
वितर्कयामि भगवन् !, दानं यद् वार्षिकं तव ।
त्रैलोक्याऽभयदानोरु–नाटकस्याऽऽमुखं हि तत् ॥ ७ ॥
धन्यास्ते विषया ग्रामा, नगर्यः पत्तनानि च ।
मलयाऽनिलवद्यानि, प्रीणयन् विहरिष्यसे ॥ ८ ॥

१४

*अष्टापदस्थ–जिनस्तवः

अपारघोरसंसार–पारावारतरीसमाः ।
निर्वाणकारणीभूता, भगवंतः पुनीत नः ॥ १ ॥
स्याद्वादवादप्रासाद–प्रतिष्ठासूत्रधारताम् ।
नयप्रमाणैर्बिभ्रद्भ्यो, युष्मभ्यमनिशं नमः ॥ २ ॥
आयोजनं गामिनीभि–र्वाणीसारणिभिर्भृशम् ।
अशेषजगदुद्याना–प्यायकेभ्यो नमोऽस्तु वः ॥ ३ ॥
युष्मद्दर्शनतोऽस्माभि–रपि सामान्यजीवितैः
अवाप्तमाऽऽपंचमार–जीवितव्यफलं परम् ॥ ४ ॥

---

* सगरपुत्रजह्नुनृपादिकृतः ।

(१) (२) (३) (४) (५)
कल्याणकैर्गर्भजन्म-प्रव्रज्याज्ञानमुक्तिभिः ।
नारकाणामपि सुख-प्रदेभ्यो वो नमो नमः ॥ ५ ॥
मेघानामिव वायूना-मिव चंद्रमसामिव ।
अर्काणामिव भवतां, साधारण्यं श्रियेऽस्तु नः ॥ ६ ॥
अष्टापदगिरावत्र, धन्यास्ते पक्षिणोऽपि हि ।
निरंतरायाः पश्यंति, भवतो ये दिने दिने ॥ ७ ॥
जीवितं चरितार्थं नः, कृतार्थो विभवश्च नः ।
युष्मदाऽऽलोकनाऽर्चाभि-श्चिररात्राय संप्रति[1] ॥ ८ ॥

१५

*श्री संभवनाथ-जिनस्तवः

नमो भगवते तुभ्यं, विश्वनाथाय तायिने ।
तृतीयतीर्थनाथाय, सनाथाय महर्द्धिभिः ॥ १ ॥
ज्ञानैस्त्रिभिश्चतुर्भिश्चाऽ-तिशयैः सहजन्मभिः ।
जगद्विलक्षणोऽप्यष्ट-सहस्रस्फुटलक्षणः ॥ २ ॥
सदैव हि प्रमत्तानां, प्रमादच्छेदकारणम् ।
इदं त्वज्जन्मकल्याणं, कल्याणायाऽद्य मादृशाम् ॥ ३ ॥

---

* जन्माऽभिषेकसमये शक्रेन्द्रसंदृब्धः ।

सकलापि श्लाघनीया, यामिनीयं जगत्पते ! ।
अकलंकतनुर्यस्या-मुद्गास्त्वं[2] सुधाकरः ॥ ४ ॥

अमर्त्यलोकवन्मर्त्य-लोकोऽप्यस्त्वधुना प्रभो ! ।
देवैस्त्वद्वंदनाहेतो-रेहिरेयाहिरापरैः[3] ॥ ५ ॥

देव ! त्वद्दर्शनसुधा--स्वादसंतुष्टचेतसाम् ।
पर्याप्तं जीर्णसुधयाऽ-तः परेण सुधांधसाम् ॥ ६ ॥

भगवन् ! भरतक्षेत्र—सरोवरसरोरुह ! ।
भूयान्मधुव्रतस्येव, त्वयि मे परमो लयः ॥ ७ ॥

मानवा अपि ते धन्या, ये त्वां पश्यंति नित्यशः ।
त्वद्दर्शनोत्सवोऽधीश !, स्वाराज्यादतिरिच्यते ! ॥ ८ ॥

१६

*श्री संभवनाथ-जिनस्तवः

चतुर्ज्ञानधर ! चतु-र्यामधर्मप्रदर्शक[4] ! ।
चतुर्गतिप्राणिगण-प्रीतिदायिञ्जय प्रभो ! ॥ १ ॥

---

* दीक्षास्वीकृत्यनन्तरं श्रीशक्रेण संदृब्धः ।

धन्यास्तास्त्रिजगन्नाथ !, भरतक्षेत्रभूमयः ।
तीर्थेश ! जंगमं तीर्थं, यासु त्वं विहरिष्यसे ॥ २ ॥

अस्मिन् वससि संसारे, संसारेण न लिप्यसे ।
पंकजं [5] पंकजमपि, याति पंकिलतां नहि ॥ ३ ॥

तवाऽसिधारासोदर्यं, जयतीदं महाव्रतम् ।
कर्मपाशच्छेदनाय, प्रभविष्णु जगत्प्रभो ! ॥ ४ ॥

निर्ममोऽपि कृपालुस्त्वं, निर्ग्रंथोऽपि महर्द्धिकः ।
तेजस्व्यपि सदा सौम्यो, धीरोऽपि भवकातरः ॥ ५ ॥

नितांतं पूजनीयः सः, नाकिनां मानवोऽपि सन् ।
विहरन् कार्यसे येन, पारणं विश्वतारणम् ॥ ६ ॥

महोपकारजनकं, स्वामिन्नविरतस्य मे ।
औषधं व्याधितस्येव, भवद्दर्शनमीदृशम् ॥ ७ ॥

त्रिजगन्नाथ ! नाथामि, त्वयि भूयान्मनो मम ।
अनुस्यूतमिवोत्कीर्ण––मिव श्लिष्टमिवाऽनिशम् ॥ ८ ॥

१७

*श्री अभिनन्दन-जिनस्तवः

स्वामिंश्चतुर्थतीर्थेश ! चतुर्थाऽरनभोरवे ! ।
चतुर्थपुरुषार्थश्री—प्रकाशक ! जय प्रभो ! ॥ १ ॥

चिरान्नाथेन भवता, सनाथमधुना जगत् ।
विवेकचौरैर्मोहाद्यै—र्नैवोपद्रोष्यते क्वचित् ॥ २ ॥

पादपीठलुठन्मूर्ध्नि, मयि पादरजस्तव ।
चिरं निविशतां पुण्य—परमाणुकणोपमम् ॥ ३ ॥

मदृशौ त्वन्मुखाऽऽसक्ते, हर्षबाष्पजलोर्मिभिः ।
अप्रेक्ष्यप्रेक्षणोद्भूतं, क्षाणात्क्षालयतां मलम् ॥ ४ ॥

मम त्वद्दर्शनोद्भूता–श्चिरं रोमांचकंटकाः ।
नुदंतां चिरकालोत्था—मसद्दर्शनवासनाम् ॥ ५ ॥

त्वदाऽऽस्यलासिनी नेत्रे, त्वदुपास्तिकरौ करौ ।
त्वद्गुणश्रोतृणी श्रोत्रे, भूयास्तां सर्वदा मम ॥ ६ ॥

कुंठाऽपि यदि सोत्कंठा, त्वद्गुणग्रहणं प्रति ।
ममैषा भारती तार्हि, स्वस्त्यैतस्यै किमन्यथा ॥ ७ ॥

---

* जन्मकल्याणकसमये शक्रसंदब्धः ।

तव प्रेष्योऽस्मि दासोऽस्मि, सेवकोऽस्म्यस्मि किंकरः।
ओमिति प्रतिपद्यस्व, नाथ ! नातः परं ब्रूवे ॥ ८ ॥

१८

*श्री सुमतिनाथ-जिनस्तवः

देवत्वज्जन्मकल्याणेनाऽपि-कल्याणभाग्मही।
किं पुनः पादकमलै-र्यत्र त्वं विहरिष्यसे ॥ १ ॥

त्वद्दर्शनसुखप्राप्त्या, कृतकृत्या दृशोऽधुना।
कृतार्थाः पाणयश्चैते, भगवन् ! पूजितोऽसि यैः ॥ २ ॥

जिननाथ ! तव स्नात्र-चर्चाऽर्चाऽऽदिमहोत्सवः।
मन्मनोरथचैत्यस्य, चिरात् कलशतां ययौ ॥ ३ ॥

जगन्नाथ ! प्रशंसामि, संसारमपि संप्रति।
यत्र त्वद्दर्शनं देव !, मुक्तेरेकं निबंधनम् ॥ ४ ॥

उर्मयोऽपि हि गण्यंते, स्वयंभूरमणोदधेः।
तवाऽतिशयपात्रस्य, न पुनर्मादृशैर्गुणाः ॥ ५ ॥

धर्मैकमंडपस्तंभ !, जगदुद्योतभास्कर !।
कृपावल्लीमहावृक्ष ! रक्ष विश्वं जगत्पते ! ॥ ६ ॥

---

* जन्माऽभिषेकसमये शक्रकृतः।

7
निर्वृतेः संवृतद्वार-समुद्घाटनकुंचिका ।
धन्यैः शरीरिभिर्देव !, श्रोष्यते तव देशना ॥ ७ ॥

मन्मनस्युज्ज्वलाऽऽदर्श-सन्निभे ! भुवनेश्वर ! ।
त्वन्मूर्तिर्नित्य संक्रांता, भूयान्निर्वृत्तिकारणम् ॥ ८ ॥

१९

*श्री पद्मप्रभ-जिनस्तवः

अस्मिन्नसारे संसारे, मरौ संचारिणां चिरात् ।
त्वद्दर्शनमभूद्देव !, देहभाजां सुधाप्रपा ॥ १ ॥

रूपेणाऽप्रतिरूपं त्वाम-श्रांतं पश्यतां सताम् ।
कृतार्थेयं समभवद्-देवानां निर्निमेषता ॥ २ ॥

नित्यांऽधकारे प्रद्योतः, सुखं निरयिणामपि ।
अभूत्ते तीर्थनाथत्व-रूपकस्य सुखं ह्यदः ॥ ३ ॥

पुण्यैः संसारिणां देव !, कृपासारणिवारिणा ।
सिक्त्वा नयसि वृद्धित्वं, चिराद्धर्ममहीरुहम् ॥ ४ ॥

जगत्त्रितयनाथत्वं, ज्ञानत्रितयधारिता ।
इदमाऽऽजन्मसिद्धं ते, शीतलत्वमिवांऽभसां ॥ ५ ॥

---

* जन्माभिषेकक्षणे मेरुगिरौ शक्रसंदृब्धः ।

पद्मवर्ण ! पद्मचिन्ह !, पद्मगंधिमुखानिल ! ।
पद्मानन ! पद्मान्वित–पद्मासद्म ! जय प्रभो ! ॥ ६ ॥

अपारो दुस्तरश्चायं सदा संसारसागरः ।
जानुदघ्नोऽधुना नाथ !, त्वत्प्रसादाद्भविष्यति ॥ ७ ॥

न कल्पांतरसाम्राज्यं, नानुऽत्तरनिवासिताम् ।
वांच्छामि किंतु शुश्रूषां, भवतः पादपद्मयोः ॥ ८ ॥

२०

*श्री सुपार्श्वनाथ–जिनस्तवः

अविज्ञेयस्वरूपे त्वय्य–र्थवादाऽऽग्रहो मम ।
आदित्यमंडलाऽदाने, फालदानं कपेरिव ॥ १ ॥

तथापि त्वत्प्रभावेण, स्तोष्ये त्वां परमेश्वर ! ।
स्यंदंते चंद्रकांता हि, चंद्रकांतिप्रभावतः ॥ २ ॥

दत्से समस्तकल्याणै–र्यत्सुखं श्वभ्रिणामपि ।
तिर्यग्नरामराणां तत्, कथं नाऽसि सुखप्रदः ? ॥ ३ ॥

---

* मेरुगिरौ सौधर्मेन्द्रसंस्तुतः ।

अप्युद्योतो जगत्त्र्या-मस्मिञ्जन्मोत्सवे तव ।
उदेष्यत्केवलज्ञान-तरणेररुणायते ॥ ४ ॥

त्वत्प्रसादस्य संपर्का-दिवैताः ककुभोऽखिलाः ।
प्रसादं कलयामासु-रधुना परमेश्वर ! ॥ ५ ॥

अमी च वांति सुखदाः, पवनाः पावनाकृते ।
सुखदे त्वयि नाथे, हि जगतां कः प्रतीपकृत् ॥ ६ ॥

धिग्नः प्रमादिनो धन्या-न्यासनान्यपि तानि नः ।
देव ! त्वज्जन्मकल्याणं, चलित्वाऽज्ञापि यैः क्षणात् ॥ ७ ॥

निदानं देव ! बध्नामि, निषिद्धमपि संप्रति ।
त्वद्दर्शनफलं मेऽस्तु, त्वयि भक्तिर्निरंतरा ॥ ८ ॥

२१

*श्री सुपार्श्वनाथ-जिनस्तवः

निःशेषभुवनकोश-पद्मकोशविवस्वते ।
तुभ्यं नमो भगवते, श्रीमते सप्तमाऽर्हते ॥ १ ॥

गतं दुःखेन विश्वस्या-विर्भूतं च मुदा प्रभो ! ।
विश्वं तीर्थपरावृत्त्या, परावृत्तमिवाऽधुना ॥ २ ॥

---

* भगवतः केवलज्ञानप्राप्त्यनंतरं सौधर्मेन्द्रकृतः ।

धर्मचक्रिँस्तववचो-रत्नदंडेन भास्वता।
निर्वाणवैताढ्यगिरे-र्द्वारमद्योद्घटिष्यते ॥ ३ ॥

उन्नतस्येव मेघस्य, भगवन् ! दर्शनं तव।
विश्वस्य जीवलोकस्य, संतापच्छेदनान्मुदे ॥ ४ ॥

अनंतज्ञान ! भगवन् !, देशनावचनं तव।
दरिद्रैर्द्रविणमिव, चिरादस्माभिराप्स्यते ॥ ५ ॥

कृतार्था दर्शनेनाऽपि, तवाऽद्यवचनेन तु।
विशेषतो भविष्यामो, मुक्तिद्वारप्रकाशिना ॥ ६ ॥

अनंतदर्शनज्ञान-वीर्यानंदमयाऽऽत्मने।
सर्वाऽतिशयपात्राय, तुभ्यं योगाऽऽत्मने नमः ॥ ७ ॥

इंद्रादिपदवीप्राप्तिः, कियदेतज्जगत्पते !।
तव शुश्रूषया यस्मात्, त्वादृशैरपि भूयते ॥ ८ ॥

२२

*श्री चन्द्रप्रभ-जिनस्तवः

त्वामऽनंतगुणं स्तोतुं, प्रवृत्तोऽस्मि हसास्पदम्।
आधारबुध्या गगन-स्योत्पाद इव टिट्टिभः ॥ १ ॥

---

* मेरौ जन्माऽभिषेकसमये सौधर्मेन्द्रसंदब्धः।

व्यापिप्रज्ञस्त्वत्प्रभावात्–क्षमोऽस्मि नु तव स्तवे ।
दिशोऽश्रुतेऽश्रलेशोऽपि, पौरस्त्याऽनिलसंगमात् ॥ २ ॥

भविना दृष्टमात्रो वा, ध्यातमात्रोऽपिवा प्रभो ! ।
कर्मपाशच्छेदनायाऽ–पूर्वशस्त्रं किमप्यसि ॥ ३ ॥

शुभानां कर्मणामऽद्य, जगत्यभ्युदयः खलु ।
पंकजानामिवाऽऽदित्ये, त्वयि विश्वतमश्छिदि ॥ ४ ॥

निजं फलमऽदत्वाऽपि, गलिष्यत्यशुभं मम ।
शेफालिकापुष्पमिव, निशाकरकराहतम् ॥ ५ ॥

प्रव्रज्याधारि रूपं ते, दूरे विश्वाऽभयप्रदम् ।
मूर्त्याऽनयापि भगवन् !, दुःखं हरसि जन्मिनाम् ॥ ६ ॥

कर्माणि भवमूलानि, छेत्तुमत्राऽऽगमः प्रभो ! ।
द्रुमानिवोन्मूलयितुं, वने मत्तमतंगजः ॥ ७ ॥

अलंकारो यथा मुक्ता–हारादिर्हृदयस्य मे ।
बहिरेष तथाऽतस्त्वं, भूयास्त्रिभुवनेश्वर ! ॥ ८ ॥

२३

*श्री चन्द्रप्रभ-जिनस्तवः

सुरासुरनरैर्मूर्ध्नि, धार्यमाणमिदं प्रभो ! ।
शासनं ते विजयते, त्रिलोकीचक्रवर्तिनः ॥ १ ॥

ज्ञानत्रयधरः पूर्वं, मनःपर्ययभृत्ततः ।
केवली चाऽधुना दिष्ट्या, दृष्टस्त्वमधिकाऽधिकम् ॥ २ ॥

तव ज्ञानमिदं नाथ !, केवलाऽभिधमुज्ज्वलम् ।
विश्वोपकारकृज्जीया–च्छाया मार्गतरोरिव ॥ ३ ॥

तावदेवांऽधकाराणि, न यावद्दिवसेश्वरः ।
मदांऽधास्तावदेवेभा, यावत्पंचाननो न हि ॥ ४ ॥

तावदेव हि दारिद्र्यं, न यावत्कल्पपादपः ।
तावदेव पयोदौस्थ्यं, न यावद्वार्षुकोऽम्बुदः ॥ ५ ॥

तावद्दिवससंतापो, न यावत्पूर्णचंद्रमाः ।
कुबोधास्तावदेवेह, न यावत्त्वं निरीक्ष्यसे ॥ ६ ॥

दृश्यसे नित्यमपि यैः, सेव्यसे च शरीरिभिः ।
ताननुमोदयामीश !, सर्वदाऽपि प्रमद्वरः ॥ ७ ॥

---

* केवलज्ञानप्राप्त्यनन्तरं शक्रेन्द्रसंदृब्धः ।

इदानीं त्वत्प्रसादेन, त्वद्दर्शनफलं मम ।
सम्यक्त्वमुत्तममिदं, भूयादाऽऽजन्मनिश्चलम्   ॥ ८ ॥

२४

*श्री सुविधिनाथ-जिनस्तवः

धर्महर्म्यदृढस्तंभ !, सम्यग्ज्ञानसुधाह्रद ! ।
जगदानंदजीमूत !, जय त्रिभुवनेश्वर !   ॥ १ ॥

जगदीश ! तव ब्रूमः, किं नामाऽतिशयांतरम् ।
यन्माहात्म्यगुणक्रीति, त्रिलोकी याति दासताम्   ॥ २ ॥

3

स्वर्गराज्येऽपि न भ्राजे, तथा दास्ये यथा तव ।
भात्यद्रौ न तथा रत्न-मप्यंऽघ्रिकटके यथा   ॥ ३ ॥

शिवं यियासुरायासी-र्वैजयन्ताच्छिवांऽतिकात् ।
मार्गभ्रांतस्य लोकस्य, मार्गं दर्शयितुं ध्रुवम्   ॥ ४ ॥

भरतक्षेत्रगेहस्य, चिरात्त्वमऽसि दैवतम् ।
निःशंकं तत्र धर्मोऽद्य, गृहस्थ इव नंदतु   ॥ ५ ॥

विश्वनाथ ! त्वदीयस्य, रूपस्याऽस्याऽतिशायिनः ।
अवतारणतां यातु, सर्वोऽयं दिविषद्गणः   ॥ ६ ॥

---

* जन्माऽभिषेकसमये शक्रेन्द्रसंदृब्धः ।

ज्योत्स्नायिते प्रभापूरे, लीयमानानि सस्पृहम् ।
दिष्ट्यात्वयि चकोरंति, लोचनानि चिरात्प्रभो !　॥ ७ ॥

वासागारे सभायां वा, तिष्ठतश्चलतोऽपि मे ।
त्वन्नाममंत्रस्मरण-मस्तु सर्वार्थसिद्धिदम्　॥ ८ ॥

२५

*श्री सुविधिनाथ-जिनस्तवः

वीतरागोऽसि चेद्रागः, पाणिपादे कथं तव ? ।
कौटिल्यं च त्वया मुक्तं, किं केशाः कुटिलास्तव ? ॥ १ ॥

प्रजानां यदि गोपस्त्वं, दंडहस्तोऽसि किं न हि ? ।
निःसंगोयदि वाऽसि त्वं, तर्त्कि त्रैलोक्यनाथता ? ॥ २ ॥

यदि त्वं निर्ममस्तर्त्कि, सर्वत्र करुणापरः ? ।
त्यक्ताऽलंकरणश्चेत्त्वं, तर्त्कि रत्नत्रयप्रियः ?　॥ ३ ॥

विश्वस्याऽप्यनुकूलश्चेत्, तर्त्कि मिथ्यादृशां द्विषन् ? ।
स्वभावसरलश्चेत्त्वं, छद्मस्थोऽस्थाः कथं पुरा ?　॥ ४ ॥

---

* केवलज्ञानप्राप्त्यनन्तरं शक्रः स्तौति ।

दयावान्यदि वाऽसि त्वं, न्यग्रहीर्मन्मथं कथम् ? ।
यदि च त्वं गतभयो, भवाद् भीतोऽसि तत्कथम् ? ॥ ५ ॥

यद्युपेक्षापरोऽसि त्वं, तत्किं विश्वोपकारकः ? ।
अदीप्तो यदि वाऽसि त्वं, दीप्तभामंडलः कथम् ? ॥ ६ ॥

यदि शांतस्वभावस्त्वं, तत्कुतस्तप्तवाँश्चिरम् ? ।
अरोषणोऽसि यदि च, रुषितः कर्मणां कथम् ? ॥ ७ ॥

अविज्ञेयस्वरूपाय, महद्भ्योऽपि [4] महीयसे ।
सिद्धाऽनन्तचतुष्काय, तुभ्यं भगवते नमः ॥ ८ ॥

२६

*श्री शीतलनाथ-जिनस्तवः

जयेक्ष्वाकुकुलक्षीर-रत्नाकरनिशाकर ! ।
जगन्मोहमहानिद्रा-[5]विद्रावणदिवाकर ! ॥ १ ॥

त्वामाऽऽलोकयितुं त्वां च, स्तोतुं त्वामऽर्चितुं तथा ।
आशंसाम्यात्मनोऽनन्ता-दृशो जिह्वा भुजा अपि ॥ २ ॥

---

* मेरौ जन्मकल्याणकमहोत्सवसमये शक्रेन्द्रसंदृब्धः ।

स्वामिन् दशमतीर्थेश !, तव पादाऽरविंदयोः
न्यस्तान्यमुनि पुष्पाणि, संपन्नं तु फलं मयि ॥ ३ ॥

अमंदं दददाऽऽनंदं, दुःखतापाऽर्दिताऽत्मनाम् ।
मर्त्यलोकेऽवातरस्त्वं, जीमूत[6] इव नूतनः ॥ ४ ॥

वसंतसमयेनेव, दर्शनेन तव प्रभो ! ।
स्युरद्य नूतनश्रीकाः, प्राणिनः पादपा इव ॥ ५ ॥

त्वद्दर्शनपवित्राणि, यानि तानि दिनानि मे ।
दिनानि शेषाणि पुनः, कृष्णपक्षतमस्विनी[7] ॥ ६ ॥

[8]स्यूतानीवाऽत्मना नित्यं, कुकर्माणि शरीरिणाम् ।
त्वयाऽद्य विघटंतां, द्रागऽयस्कांतेन लोहवत् ॥ ७ ॥

अत्र वा दिवि वा तिष्ठँ-स्तिष्ठन्नऽन्यत्र वा क्वचित् ।
त्वद्वाहनमहं भूयां, त्वामेव हृदये वहन् ॥ ८ ॥

२७

*श्री शीतलनाथ-जिनस्तवः

त्वत्पादपंकजनख-द्युतिजालजलाऽऽप्लवैः ।
स्नायं [9]स्नायं पुनंति स्वं, धन्यास्त्रिभुवनेश्वर ! ॥ १ ॥

---

* समवसरणभुवि शक्रेन्द्रसंदृब्धः ।

भास्करेणेव गगनं, हंसेनेव महासरः ।
पार्थिवेनेव नगरं, शोभते भारतं त्वया ॥ २ ॥

आलोकस्तिमिरेणेव, सूर्या[10]स्तेंदूदयांऽतरे ।
मिथ्यात्वेन पराभूतो, धर्मस्तीर्थद्वयाऽन्तरे ॥ ३ ॥

जगदंधमिदं[1] जज्ञे, निर्विवेकविलोचनम् ।
अपथेषु प्रववृते, दिङ्मूढमिव सर्वतः ॥ ४ ॥

अधर्मो धर्मबुद्ध्या चाऽ–देवता देवताधिया ।
गुरुबुद्ध्या चाऽगुरवो, भ्रांतैर्जगृहिरे जनैः ॥ ५ ॥

नरका[2]ऽवटपाताय, जगत्यस्मिन्नुपस्थिते ।
निसर्गकरुणांऽभोधि–स्तत्पुण्यैस्त्वमवातरः ॥ ६ ॥

मिथ्यात्वा[3]ऽऽशीविषो लोके, प्रभविष्णुरसौ चिरम् ।
तावदेव न यावत्ते, प्रसरेद्वचनाऽमृतम् ॥ ७ ॥

तन्मिथ्यात्वाऽपसारेण, सम्यक्त्वं जगतोऽधुना ।
भावि प्रभो ! केवलं ते, घातीकर्मक्षयादिव ॥ ८ ॥

२८

*श्री श्रेयांसनाथ-जिनस्तवः

सर्वकल्याणकश्रेष्ठं, जन्मकल्याणकं तव ।
विश्राणयतु कल्याणं, कल्याणीभक्तिके[1] मयि ॥ १ ॥

स्नपयाम्यथ चर्चामि, किमर्चामि स्तवीमि किम् ? ।
त्वामितीश ! न तृप्तिर्मे, त्वदाऽऽराधनकर्मणि ॥ २ ॥

वृषः[2] कुतीर्थिकव्याघ्र-त्रासितस्त्वयि रक्षके ।
अमुष्मिन् भरतक्षेत्रे, स्वैरं चरतु संप्रति ॥ ३ ॥

अद्य स्वयमधिष्ठाय, हृदयाऽऽयतनं मम ।
दिष्ट्या देवाधिदेव ! त्वं, सनाथीकुरुषेतराम् ॥ ४ ॥

न तथा भूषणं नाथ !, ममैभिर्मुकुटादिभिः ।
यथा शिरोऽग्रलुठितै-स्त्वत्पादनखरश्मिभिः ॥ ५ ॥

न तथा त्रिजगन्नाथ !, स्तूयमानस्य मागधैः ।
मम प्रमोदो भवति, त्वद्गुणान् स्तुवतो यथा ॥ ६ ॥

रत्नसिंहासनस्थस्य, नहि मध्येसभं[3] तथा ।
उच्चैस्त्वं[4] त्वत्पुरो भूमि-निषण्णस्य यथा मम ॥ ७ ॥

---

* मेरौ शक्रेन्द्रसंदृब्धः ।

+स्वराज्यसंभवामेतां, न कांक्षामि स्वतंत्रताम् ।
परतंत्रश्चिरं भूयां, नाथेन भवता प्रभो ! ॥ ८ ॥

२९

*श्री श्रेयांसनाथ-जिनस्तवः

अमंदाऽनंदनिःस्यंद-दायिने परमेश्वर ! ।
मोक्षकारणभूताय, [5]मोक्षायैव नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥

तव दर्शनमात्रेऽपि, कर्माण्यन्यानि विस्मरन् ।
आत्मारामी भवेद्देही, किं पुनः [6]श्रुतदेशनः ? ॥ २ ॥

क्षीरोदः किमुदीर्णोऽसि, कल्पवृक्षः किमुद्गतः ।
[7]वर्षुकाऽब्दोऽवतीर्णो वा, स्वामिन् ! [8]संसारधन्वनि ॥ ३ ॥

पीड्यमानस्य विश्वस्याऽ-सद्ग्रहैः क्रूरकर्मभिः ।
एकादशो जिनेंद्रस्त्वं, त्राता [9]ज्योतिष्मतां पतिः ॥ ४ ॥

त्वयेक्ष्वाकुकुलं नाथ !, निसर्गेणाऽपि निर्मलम् ।
निर्मलीक्रियतेऽत्यन्तं, स्फटिकाऽश्मेव वारिणा ॥ ५ ॥

+ 'स्वाराज्य०' इत्यपि पाठो युक्तः, 'देवलोकराज्यसंभवां इत्यर्थः ।
* धर्मदेशनपरिषदि इन्द्रादिः स्तौति ।

जगत्त्रयस्य निःशेष–संतापहरणात् प्रभो ! ।
पादमूलं तवाऽशेष–च्छायाभ्योऽप्यतिरिच्यते ॥ ६ ॥

त्वत्पादपद्मयोर्भृंगी--भूय संप्राप्तसंमदः[10] ।
नाऽहं भुक्त्यै न वा मुक्त्यै, स्पृहयालुर्जिनेश्वर ! ॥ ७ ॥

भवे भवे भवदीयौ, चरणौ शरणं मम ।
अभ्यर्थये जगन्नाथ !, त्वत्सेवा किं न साधयेत् ? ॥ ८ ॥

३०

*श्री वासुपूज्यस्वामि-जिनस्तवः

चक्रिणां नैव चक्रेण, न चक्रेणाऽर्धचक्रिणाम् ।
न चेशानस्य शूलेन, न वज्रेण ममाऽपि वा ॥ १ ॥

न चास्त्रैरपरेन्द्राणां, यानि भेद्यानि जातुचित् ।
तानि कर्माणि भिद्यंते, दर्शनेनाऽपि नाथ ! ते ॥ २ ॥

नैव क्षीरोदवेलाभि–र्न प्रभाभिः क्षपापतेः ।
नैव वारिधराऽऽसारै–र्न च गोशीर्षचंदनैः ॥ ३ ॥

न वा निरंतरैः रंभा[1]–ऽऽरामैः शाम्यंति ये खलु ।
सर्वे ते दुःखसंतापाः, शीर्यन्ते दर्शनेन ते ॥ ४ ॥

---

* मेरौ कृताऽभिषेक इन्द्रः स्तौति ।

न ये नानाविधैः क्वाथै-श्चूर्णैश्च विविधैर्न ये ।
न च प्राज्यैः प्रलेपैर्ये, न च ये शस्त्रकर्मभिः ॥ ५ ॥

न च मंत्रप्रयोगैर्ये, छिद्यंते जातु देहिनाम् ।
[2] आमयास्ते प्रलीयन्ते दर्शनेनाऽपि ते प्रभो ! ॥ ६ ॥

[3] खलूक्त्वा यदि वाऽनल्प-मल्पमेतद् ब्रवीम्यहम् ।
यत्किंचिदऽप्यसाध्यं तत्, साध्यते दर्शनेन ते ॥ ७ ॥

त्वद्दर्शनस्याऽस्य फल-मिच्छाम्येतज्जगत्पते ! ।
भूयो भूयः संप्रतीव, भवद्दर्शनमस्तु मे ॥ ८ ॥

३१

*श्री वासुपूज्यस्वामि-जिनस्तवः

नितान्तभीषणमितः, प्रसृतं मोहदुर्दिनम् ।
प्रतिक्षणमितश्चाशा, वेला इव नवा नवाः ॥ १ ॥

[4] महायाद इवेतश्च, दुर्वारो मकरध्वजः ।
इतश्च विषयाः पापाः, प्रौढा दुःपवना इव ॥ २ ॥

इतः कषायाः क्रोधाद्या-महावर्ता इवोल्बणाः ।
[5] रागद्वेषादयश्चेतो, नगदंता इवोत्कटाः ॥ ३ ॥

---

* समवसरणभुवि शक्रद्विपृष्टविजयाः स्तुवन्ति ।

महोर्मय इवेतश्च, नानादुःखपरंपराः ।
इतश्चाऽऽर्त्तरौद्रध्यान-मौर्वानल इवोच्चकैः ॥ ४ ॥

इतश्च ममता वेत्र-वल्लीव स्खलनाऽस्पदम् ।
इतश्च व्याधयोऽनल्पा, नक्रस्तोमा इवोद्धताः ॥ ५ ॥

अस्मिन्नपारे संसारे, पारावारेऽतिदारुणे ।
पतितानुद्धर चिरात्, प्राणिनः परमेश्वर ! ॥ ६ ॥

परेषामुपकाराय, केवलज्ञानदर्शने ।
तवेमे त्रिजगन्नाथ !, तरोः पुष्पफले इव ॥ ७ ॥

कृतार्थमद्य मे जन्म, कृतार्थो विभवोऽद्य मे ।
कर्तुं लेभे मयाऽयं यत्, त्वत्सपर्यामहोत्सवः ॥ ८ ॥

३२

*श्री विमलनाथ-जिनस्तवः

मोहेन तिमिरेणेव, परितोऽपि प्रसारिणा ।
नितांतकोपनै[1]र्नक्तं-चरैरिव जटाधरैः ॥ १ ॥

बुद्धिसर्वस्वहरणै-श्चार्वाकैस्तस्करैरिव ।
अत्यंतमायानिपुणै-र्गोमायुभिरिव द्विजैः[2] ॥ २ ॥

---

* मेरौ शक्रेन्द्रसंस्तुतः ।

भ्रमद्भिर्मंडलीभूय, कौलाचार्यैर्वृकैरिव ।
उलूकैरिवपाखंडै-र्वल्गद्भिरपरैरपि ॥ ३ ॥

सिद्धेनेव[3] विवेकाक्षं, मिथ्यात्वेन विलुंपता ।
सद्भूतानां पदार्थाना-मविज्ञानेन सर्वतः ॥ ४ ॥

अभूच्चिरमयं कालो, यामिन्येव जगत्पते ! ! ।
प्रभातं त्वधुना जज्ञे, त्वया नाथेन भास्वता ॥ ५ ॥

त्वत्पादपद्मामाऽऽसाद्य,[4] लंघिताऽलंघिता खलु ।
निम्नैरपि हि संसार-निम्नगा निम्नगा जनैः ॥ ६ ॥

भवच्छासननिःश्रेणि-मधिरुह्याऽचिरादपि ।
मन्येऽध्यासितमेवोच्चै-[5]र्लोकाऽग्रं भव्यजंतुभिः ॥ ७ ॥

अस्माकमप्यनाथानां, चिरान्नाथोऽस्युपस्थितः ।
निदाघाऽऽतपतप्तानां, पांथानामिव वारिदः ॥ ८ ॥

३३

*श्री विमलनाथ-जिनस्तवः

देव ! त्वद्दर्शनेनाऽद्य, दुःखं संसारिकं ययौ ।
शरीरिणां भुवः पंक-इव वार्षिकवारिणा ॥ १ ॥

---

* धर्मदेशनभुवि शक्रेन्द्रकृतः ।

पुण्योऽयं दिवसः स्वामिँ–स्त्वद्दर्शननिबन्धनम् ।
यत्राऽमलीभविष्यामो[6], दुःकर्ममलिना वयम् ॥ २ ॥

अंगाऽवयवराजत्वं[7], प्रत्यपद्यंत नो दृशः
यास्त्वद्दर्शनमासाद्य, सद्योऽधुः शुद्धिमात्मनः ॥ ३ ॥

पूतास्त्वत्पादसंपर्काद्–भरतक्षेत्रभूमयः ।
अपि ताः पापनाशाय, किं पुनस्तव दर्शनम् ॥ ४ ॥

मिथ्यादृशामुलूकाना–मिव त्वद्दर्शनं विभो ! ।
केवलाऽऽलोकमार्त्तंड[8]–तिरोभावनिबन्धनम् ॥ ५ ॥

त्वद्दर्शनसुधापान[9]–समुच्छ्वसितवर्ष्मणाम् ।
अद्य देव ! त्रुटिष्यंति, कर्मबन्धाः शरीरिणाम् ॥ ६ ॥

विवेकदर्पणोन्मार्ष्टि[10]–समुत्पादनकर्मठाः ।
कल्याणतरुबीजाऽऽभाः, पांतु त्वत्पादपांसवः ॥ ७ ॥

स्वामिन् ! पीयूषगंडूष–इव ते देशनावचः ।
संसारमरुमग्नाना–मस्तु नः स्वास्थ्यहेतवे ॥ ८ ॥

३४

*श्री अनंतनाथ-जिनस्तवः

तवाऽग्रे भूमिलुठनै-र्ये हि भूरेणुनांऽचिताः ।
गोशीर्षचंदनेनांऽग-रागस्तेषां न दुर्लभः ॥ १ ॥

भक्त्यैकमपि यैः पुष्पं, त्वन्मूर्धन्यधिरोप्यते ।
ते छत्राऽशून्यशिरसः[1], संचरंति निरन्तरम् ॥ २ ॥

अंगरागस्तवांऽगे यै-रेकदाऽपि विधीयते ।
देवदूष्यांऽशुकधरा-स्ते भवंति न संशयः ॥ ३ ॥

निधीयते भवत्कंठे, पुष्पदामैकदापि यैः ।
लुठन्ति तेषां कंठेषु, दोर्लताः[2] सुरयोषिताम् ॥ ४ ॥

ये वर्णयन्त्येकदाऽपि, त्वद्गुणानतिनिर्मलान् ।
ते गीयंते सुरस्त्रीभि-रपि लोकातिशायिनः ॥ ५ ॥

ये चारुचारी[3]चतुरं, भक्त्या वल्गंति ते पुरः ।
ऐरावणकरिस्कंधाऽऽ-सनं तेषां न दुर्लभम् ॥ ६ ॥

ध्यायंति परमात्मानं, ये त्वां देव ! दिवानिशम् ।
त्वादृशीभूय ते लोके, ध्येयतां यांति सर्वदा ॥ ७ ॥

---

* मेरौ शक्रेन्द्रसंस्तुतः ।

स्नात्रांऽगरागनेपथ्याऽऽ-कल्पप्रभृतिकल्पने ।
अधित्वन्मेऽधिकारोऽस्तु,[4] सदाऽपि त्वत्प्रसादतः ॥ ८ ॥

३५

*श्री अनन्तनाथ-जिनस्तवः

देहभाजां मनोवित्तं,[5] विषयैस्तस्करैरिव ।
तावदुल्लंघ्यते यावन्-न त्वमेषामऽधीश्वरः ॥ १ ॥

प्रसर्पत्कोपतिमिरं, दृशोऽन्धकरणं नृणाम् ।
दूरादपसरत्येव, त्वद्दर्शनसुधांऽजनात् ॥ २ ॥

मानेन भूतेनेवाऽऽत्ता-[6]स्तावदज्ञाः शरीरिणः ।
यावद्भवद्वचो मंत्र-इव तैर्न हि शुश्रुवे ॥ ३ ॥

त्वत्प्रसादात् त्रुटन्माया-निगडानां शरीरिणाम् ।
संप्राप्ताऽऽर्जवयानानां, मुक्तिर्न हि दवीयसी ॥ ४ ॥

यथा यथा देहभाजो, निरीहास्त्वामुपासते ।
चित्रं तथा तथा तेषा-मस्युत्कृष्टफलप्रदः ॥ ५ ॥

संसारसरितो राग-द्वेषौ द्वे[7] श्रोतसी इव ।
तद्द्वीप इव माध्यस्थ्ये, स्थीयते तव शासनात् ॥ ६ ॥

---

* समवसरणभुवि सौधर्मेन्द्रकृतः ।

देहिनां निर्वृतिद्वार-प्रवेशोत्सुकचेतसाम् ।
मोहांऽधकारदीपत्वं, त्वं धारयसि नाऽपरः ॥ ७ ॥
विषयैः कषायराग-द्वेषमोहैरनिर्जिताः ।
भूयास्म त्वत्प्रसादेन, प्रसीद परमेश्वर ! ॥ ८ ॥

३६

*श्री धर्मनाथ-जिनस्तवः

नमस्तुभ्यं पंचदशायाऽ-ऽर्हते परमेश्वर ! ।
परमध्येयरूपाय, परमध्यायिनेऽपि च ॥ १ ॥
देवेभ्यो दानवेभ्योऽपि, मर्त्यान्मन्ये गरीयसः ।
त्रैलोक्यवंद्यो यत्र त्व-मुदभूस्तीर्थनायकः ॥ २ ॥
अपाग्भरतवर्षेऽस्मिन्[1], ममाऽद्यैवाऽस्तु मर्त्यता ।
मोक्षसाधनसाधीय-स्त्वच्छिष्यत्वजिघृक्षया ॥ ३ ॥
नारकेभ्यो नाकसदां, को भेदः सुखिनामपि ।
भवेद्येषां प्रमत्तानां, न भवत्पाददर्शनम् ॥ ४ ॥
विजृंभितं तावदेव, घूकैरिव कुतीर्थिकैः ।
न यावत्रिगन्नाथ !, रवेरिव तवोदयः ॥ ५ ॥

---

* मेरौ शक्रेन्द्रस्तुतः ।

तव वर्षांऽबुदस्येव, धर्मदेशनवारिणा ।
भरतार्ऽधं सर इवाऽ-शेषं पूरिष्यतेऽचिरात् ॥ ६ ॥

अनंतान् देहिनो मुक्तिं, प्रापयन् परमेश्वर ! ।
अरिदेशमिवोर्वीश-स्त्वं कर्ता भवमुद्वसम् ॥ ७ ॥

त्वत्पादपद्मलीनेन, षट्पदेनेव चेतसा ।
भगवन् ! कल्पवासेऽपि, प्रयांतु मम वासराः ॥ ८ ॥

३७

*श्री धर्मनाथ-जिनस्तवः

विजयस्व जगच्चक्षु[1]-श्चकोराऽनंदचंद्रमाः ।
मिथ्यात्वध्वांतमार्तंड !, धर्मनाथ ! जगत्पते ! ॥ १ ॥

चिरं व्यहार्षीश्छद्मस्थो, गतछद्मा[2] तथाऽप्यसि ।
अनन्तदर्शनोऽपि त्वं, दर्शनांऽतरबाधकः ॥ २ ॥

त्वद्देशनापयःपूरैः, परितः प्लाविताऽऽत्मनाम् ।
अह्नाय कर्ममालिन्य-मपयाति शरीरिणाम् ॥ ३ ॥

तथा न मेघच्छायासु, तरुच्छायासु नाऽपि वा ।
यथा शाम्यति संतापः, पादमूले तव प्रभो ! ॥ ४ ॥

---

* समवसरणभूम्यां सौधर्मेन्द्रः स्तौति ।

इह त्वद्दर्शनाऽऽलोक–निस्यंदवपुषः प्रभो ! ।
पांचालिकावदुत्कीर्णा, इव भांति शरीरिणः ॥ ५ ॥

पृथग्विरुद्धमप्येत–देकत्र मिलितं चिरात् ।
त्वत्प्रभावाज्जगद्बंधो !, बंधूभूतं जगत्त्रयम् ॥ ६ ॥

त्रिखंडभरतक्षेत्र–मूलायतनदैवत ! ।
अनन्यशरणान–ऽस्मांस्त्रायस्व परमेश्वर ! ॥ ७ ॥

भूयो भूयो जगन्नाथ !, त्वामदः प्रार्थयामहे ।
त्वपादपंकजद्वंद्वे–ऽस्मन्मनो भ्रमरायताम् ॥ ८ ॥

३८

*श्री शांतिनाथ–जिनस्तवः

भगवन् ! भवते विश्व[1]–जनीनायाऽद्भुतर्द्धये ।
संसारमरुमार्गैक–च्छायाविटपिने नमः ॥ १ ॥

संचितैनस्तम[2]स्विन्याः, प्रभातसमयो मया ।
त्वदीयं दर्शनं दिष्ट्याऽ–धिगतं परमेश्वर ! ॥ २ ॥

लोचनान्यपि धन्यानि,–यैर्दृष्टोऽसि जगत्पते ! ।
तेभ्योऽपि पाणयो धन्या–स्त्वत्संस्पर्शोऽन्वभावि यैः ॥ ३ ॥

---

* जन्माभिषेकसमये शक्रेन्द्रकृतः ।

विद्याधराणां महर्द्धि-श्चक्रवर्ती कदाऽप्यसि ।
प्रकृष्टोऽस्येकदा देवो, बलदेवोऽसि चैकदा ॥ ४ ॥

एकदाऽप्यच्युतेंद्रोऽसि, ज्ञानी चक्रभृदेकदा ।
एकदा त्वं महेंद्रोऽसि, ग्रैवेयकविभूषणम् ॥ ५ ॥

महासत्त्वोऽवधिज्ञान-धरो राजाऽसि चैकदा ।
सर्वार्थसिद्धाऽलंकारो-ऽहमिंद्रः पुनरेकदा ॥ ६ ॥

क्व क्व जन्मनि नाभूस्त्व-मुत्कृष्टः परमेश्वर ! ।
तीर्थकृज्जन्मना त्वऽद्य, पर्याप्ता वर्णना गिरः ॥ ७ ॥

नेशोऽस्मि त्वद्गुणान् वक्तुं, स्वमर्थं किं तु वच्म्यहम् ।
भवे भवे भवतु मे, भक्तिस्त्वत्पादपद्मयोः ॥ ८ ॥

३९

श्री शान्तिनाथजिनस्तवः

श्रेयोदशाप्रवेशोऽद्य, जगतोऽपि जगत्पते ! ।
ज्ञानाऽदित्येन भवता, सुदिनोत्सवकारिणा ॥ १ ॥

पुण्यैरस्मादृशामेते, तव कल्याणकोत्सवाः ।
कल्याणचिंतामणयः, प्रभवंति जगद्गुरो ! ॥ २ ॥

कषायादिमलालीढं, मनः सर्वशरीरिणाम् ।
क्षालयंति जगन्नाथ !, त्वद्दर्शनजलोर्मयः ॥ ३ ॥

कर्मच्छिदे बद्धयत्न–स्तीर्थकृत्कर्म यत् पुरा ।
आर्जयस्तत्तव स्वार्थाऽ–नपेक्षाऽन्योपकारिता ॥ ४ ॥

घोरसंसारभीतानां, महादुर्गमिव प्रभो ! ।
जगत्यऽदस्ते समव–सरणं शरणं नृणाम् ॥ ५ ॥

जानासि सर्वं सर्वेषां, भावं सर्वहितोऽसि च ।
प्रार्थनीयं न तत् किंचि–त्तथापि प्रार्थ्यसे मया ॥ ६ ॥

यथा हि विहरन्नुर्व्यां, ग्रामाकरपुरादिकम् ।
क्षणे क्षणे त्वं त्यजसि, मा त्याक्षीर्मन्मनस्तथा ॥ ७ ॥

त्वत्पादपंकजध्यान–षट्पदीभूतचेतसः ।
व्यतिक्रामतु मे कालो, भगवँस्त्वत्प्रसादतः ॥ ८ ॥

४०

*श्रीकुंथुनाथ–जिनस्तवः

अद्य नीराणि क्षीरोद–प्रभृतीनामुदन्वताम् ।
पद्मप्रभृतिहृदानां, पद्मानि च पयांसि च ॥ १ ॥

---

* मेरौ इन्द्रादिः स्तौति ।

औषध्यः क्षुद्रहिमवत्-प्रभृतीनां महीभृताम् ।
भद्रशालप्रभृतीनां, वनानां कुसुमान्यपि ॥ २ ॥

मलयाऽधित्यकादीनां, भूमीनां चंदनानि च ।
युष्मत्स्नात्रोपयोगेन, कृतार्थानि जगत्पते ! ॥ ३ ॥

(त्रिभिर्विशेषकम्)

कृतार्थमिदमैश्वर्य-मखिलानां दिवौकसाम् ।
देव ! त्वज्जन्मकल्याण-महोत्सवविधानतः ॥ ४ ॥

उत्कृष्टो भूभृतामद्य, तीर्थभूतोऽयमद्य च ।
प्रासाद इव बिंबेन, त्वया मेरुरलंकृतः ॥ ५ ॥

अद्य चक्षूंषि चक्षूंषि, पाणयश्चाऽद्य पाणयः ।
दर्शनेन स्पर्शनेन, भवतो भुवनेश्वर ! ॥ ६ ॥

अद्य नः सफलं नाथाऽ-वधिज्ञानं निसर्गजम् ।
येन ते जन्म विज्ञाय, जन्मोत्सवमकुष्महि ॥ ७ ॥

यथाऽद्य हृदयद्वारे, स्नात्रकाले ममाऽभवः ।
तथैव हृदयस्थान्त रपि भूयाश्चिरं प्रभो ! ॥ ८ ॥

४१

*श्रीकुंथुनाथ-जिनस्तवः

चतुर्धाधर्मदेष्टारं, चतुर्गात्रं चतुर्मुखम् ।
चतुर्थपुरुषार्थेशं, त्वां स्तुमः परमेश्वरम् ॥ १ ॥

चतुर्दश[1]महारत्नीं, निःसंगत्वात्त्वमत्यजः ।
रत्नत्रयीं त्वनवद्यां, दधासि जगदीश्वर ! ॥ २ ॥

मनो हरसि विश्वस्य, निर्मनस्कस्तथाऽप्यऽसि ।
उत्तप्तस्वर्णवर्णस्त्वं, ध्यायसे चेन्दुसन्निभः ॥ ३ ॥

निःसंगोऽपि महर्द्धिस्त्वं, ध्येयोऽपि ध्यातृताऽऽस्पदम् ।
कोटिशोऽप्यावृतो देवा-दिभिः कैवल्य[2]भागऽसि ॥ ४ ॥

विश्वस्य रागं तनुषे, वीतरागोऽसि च स्वयम् ।
अकिंचनोऽपि भवसि, जगतः परमर्द्धये ॥ ५ ॥

अविज्ञेयप्रभावायाऽ-ज्ञेयरूपाय तायिने ।
नमो भगवते सप्त-दशाय भवतेऽर्हते ॥ ६ ॥

प्रणामोऽपि त्वयि विभो !, ऽचिन्त्यचिन्तामणिर्नृणाम् ।
किं पुनर्मनसा ध्यानं, स्तवनं वचसाऽपि वा ॥ ७ ॥

---

* समवसरणभुवि शक्रेन्द्रकृतः ।

प्रणामे स्तवने ध्याने, प्रभो ! त्वद्विषये मम ।
प्रवृत्तिः सर्वदाऽप्यस्तु, कृतमऽन्यैर्मनोरथैः ॥ ८ ॥

४२

*श्री अरनाथ-जिनस्तवः

नष्टाऽष्टादशदोषायाऽ-ष्टादशायाऽर्हते प्रभो ! ।
अष्टादशविधब्रह्म-भृतां ध्येयाय ते नमः ॥ १ ॥

ज्ञानत्रयं गर्भतोऽपि, यथैवाऽयतने तव ।
तथैवाऽखिलमप्येतत्, तीर्थनाथ ! जगत्त्रयम् ॥ २ ॥

मोहाऽवस्वापिनीं दत्त्वा, रागद्वेषादिदस्युभिः ।
चिरं जगदवस्कन्नं, स्वामिंस्त्रायस्व संप्रति ॥ ३ ॥

पथि श्रांतैरिव रथ-स्तृष्णाऽऽक्रांतैरिवाऽपगा ।
तप्तैरिव तरुच्छाया, निमज्जद्भिरिवोडुपः[1] ॥ ४ ॥

रोगिभिरिव भैषज्यं, ध्वान्ताऽन्धैरिव दीपकः ।
हिमार्त्तैरिव मार्तंडो, मार्गमूढैरिवाऽग्रगः ॥ ५ ॥

---

* मेरौ इन्द्रादिः स्तौति ।

2
व्याघ्रभीतैरिवार्चिष्मा-न्नैर्नाथ्यविधुरैश्चिरात् ।
तीर्थनाथ ! त्वमस्माभि-र्नाथः प्राप्तोऽसि संप्रति ॥ ६ ॥
(त्रिभिर्विशेषकम्)

भवन्तं नाथमाऽऽसाद्य, सुरासुरनरा अमी ।
स्वस्वस्थानेभ्य आगच्छं-त्यमांत इव हर्षतः ॥ ७ ॥

4
भवतो नाथ ! नाथामि, न खल्वन्यत् किमप्यहम् ।
नाथामि किंत्विदं मे त्वं, नाथो भूया भवे भवे ॥ ८ ॥

४३

*श्रीअरनाथ-जिनस्तवः

जय त्रिभुवनाऽधीश !, जय विश्वैकवत्सल ! ।
जय कारुण्यजलधे !, जयाऽतिशयशोभित ! ॥ १ ॥

विश्वप्रकाशनं भानो-रमोघैर्भानुभिः सदा ।
विश्वसंतापहरणं, ज्योत्स्नया च हिमद्युतेः ॥ २ ॥

जगज्जीवनमंऽभोभिः, प्रावृडंऽभोधरस्य च ।
जगदाऽऽश्वासनं वायो-र्गत्या संततयापि च ॥ ३ ॥

---

* समवसरणभुवि शक्रेन्द्रकृतः ।

यथा निष्कारणमिह, तथा ते परमेश्वर ! ।
जगत्त्रयोपकाराय, प्रवृत्तिर्जयति प्रभो ! ॥ ४ ॥

अंधकारमयं चाऽसी-दंधं वा जगदऽप्यदः ।
सप्रकाशं सेक्षणं वा, त्वया जज्ञेऽधुना पुनः ॥ ५ ॥

नारकाणां खिलः पंथा, भविताऽतः परं प्रभो ! ।
तिर्यग्योनावपि गतिः, स्तोकस्तोका भविष्यति ॥ ६ ॥

सीमग्रामांऽतराणीव, स्वर्गाश्च प्राणिनाममी ।
प्रत्यासन्ना भविष्यन्ति, मुक्तिरप्यदवीयसी ॥ ७ ॥

त्वयि विश्वोपकाराय, विहरत्यवनीमिमाम् ।
भावि किं किं न कल्याण-मसंभाव्यमपि प्रभो ! ॥ ८ ॥

४४

*श्रीमल्लिनाथ-जिनस्तवः

ज्ञानत्रयनिधानाय, प्रधानाय जगत्त्रये ।
एकोनविंशतितमाऽ-याऽर्हते ते नमो नमः ॥ १ ॥

दिष्ट्या त्वद्दर्शनेनाऽनु-गृहीतोऽस्मि चिरादहम् ।
सामान्यपुण्यैर्न ह्यर्हन्, देवः साक्षान्निरीक्ष्यते ॥ २ ॥

---

* मेरौ जन्माऽभिषेकसंमये शक्रकृतः ।

देवानामद्य देवत्वं, चरितार्थं चिरादऽभूत् ।
तव देवाधिदेवस्य, जन्मोत्सवनिरीक्षणात् ॥ ३ ॥

एकतोऽच्युतनाथस्य, प्राणिमात्रस्य चाऽन्यतः ।
समानुग्रहबुद्धे ! त्वं, पाहि नः पततो भवे ॥ ४ ॥

अस्मिन्मेरुगिरिर्धात्र्याः[1], सुवर्णमुकुटायते ।
इन्द्रनील इव न्यस्त–स्त्वमतीव विराजसे ॥ ५ ॥

स्मरणेनाऽपि मोक्षायाऽ–नीहमानस्य जायते ।
दृष्ट्वा स्तुत्वा याच्यसे किं, ततोऽप्यभ्यधिकं फलम् ॥ ६ ॥

धर्माण्येकत्र सर्वाणि, तव चैकत्र दर्शनम् ।
फलाऽप्तिसाधकत्वेन, द्वितीयमतिरिच्यते[2] ॥ ७ ॥

नेन्द्रत्वे नाऽहमिन्द्रत्वे, मन्ये मोक्षेऽपि नो तथा ।
यथासुखं स्याल्लुठतः, पुरस्त्वत्पादपद्मयोः ॥ ८ ॥

४५

*श्रीमल्लिनाथ–जिनस्तवः

दिष्ट्या प्रणमतां भाले, त्वत्पादनखरश्मयः ।
भवन्ति भवभीतानां, रक्षातिलकसन्निभाः[3] ॥ १ ॥

---

* समवसरणभुवि इन्द्रादिकृतः ।

आजन्मब्रह्मचारित्वा–दीक्षा ते जन्मतोऽपि हि ।
[4]व्रतपर्यायदेशीयं, मन्ये जन्माऽपि तत्तव ॥ २ ॥

किं देवसद्मना तेन, न यत्र तव दर्शनम् ।
इदं तु भूतलं श्रेय–स्त्वदाऽऽलोकपवित्रितम् ॥ ३ ॥

नृदेवतिर्यग्जन्तूनां, भीतानां भववैरितः ।
दुर्गं त्वदीयं समव–सरणं शरणं प्रभो ! ॥ ४ ॥

कुकर्माण्यन्यकर्माणि, त्वत्पादप्रणतिं विना ।
यैः कर्माण्येव सूयंते, संसारस्थितिकारणम् ॥ ५ ॥

दुर्ध्यानान्यन्यध्यानानि, भवद्ध्यानं विना खलु ।
यैरात्मा बध्यते बाढं, निजैर्लूतेव[5] तंतुभिः ॥ ६ ॥

कथाश्च दुःकथा एव, भवद्गुणकथां विना ।
यकाभिस्तित्तिरिरिव[6], वाग्भिर्विपदमश्नुते ॥ ७ ॥

त्वत्पादपद्मसेवायाः, प्रभावेण जगद्गुरो ! ।
भवच्छेदोऽस्तु यद्वाऽस्तु[7], त्वयि भक्तिर्भवेभवे ॥ ८ ॥

४६

*श्रीमुनिसुव्रतस्वामि-जिनस्तवः

अद्याऽवसर्पिणीकाल-सरोवरसरोरुह ! ।
दिष्ट्या प्राप्तोऽसि भगवन्न-स्माभिर्भ्रमरैश्चिरात् ॥ १ ॥

अजायत तव स्तोत्रा-द्ध्यानात् पूजादिकादऽपि ।
वाङ्मनोवपुषां श्रेयः, फलमद्यैव देव ! मे ॥ २ ॥

यथा यथा नाथ ! भक्ति-र्गुरुर्भवति मे त्वयि ।
लघूभवंति कर्माणि, प्राक्तनानि तथा तथा ॥ ३ ॥

स्वामिन्नविरतानां नः,[8] स्याज्जन्मैतन्निरर्थकम् ।
यदि त्वद्दर्शनं न स्या-दिदं पुण्यनिबंधनम् ॥ ४ ॥

तवांऽगस्पर्शनस्तोत्र-निर्माल्याऽऽघ्राणदर्शनैः ।
गुणगीताऽऽकर्णनैश्च, कृतार्थानीन्द्रियाणि नः ॥ ५ ॥

मेरुमौलिरियं भाति, नीलरत्नत्विषा त्वया ।
प्रावृषेण्यांबुदेनेव, नयनाऽऽनन्ददायिना ॥ ६ ॥

स्थितो भरतवर्षेऽपि, सर्वगः[9] प्रतिभासि नः ।
यत्र तत्र स्थितानां यद्-भवस्यर्तिच्छिदे स्मृतः ॥ ७ ॥

---

* मेरौ जन्माभिषेकक्षणे शक्रसंदब्धः ।

अस्तु च्यवनकालेऽपि, त्वत्पादस्मरणं मम[10] ।
यथा प्राग्जन्मसंस्कारा–त्तदेवस्याद्भवान्तरे ॥ ८ ॥

४७

*श्रीमुनिसुव्रतस्वामि–जिनस्तवः

त्वत्पाददर्शनस्यैव, प्रभावोऽयं जगत्पते ! ।
यत्त्वद्गुणान् वर्णयितुं, मादृशोऽपि प्रगल्भते ॥ १ ॥

देशनासमये पुण्यां, तव गां परमेश्वर ! ।
वंदामहे श्रुतस्कंध[1]–वत्सप्रसविनीमिह ॥ २ ॥

त्वद्गुणग्रहणात् सद्यो, भवंति गुणिनो जनाः ।
स्निग्धद्रव्यस्य योगाद्धि, स्निग्धीभवति भाजनम् ॥ ३ ॥

ये हि त्यक्ताऽन्यकर्माणः, शृण्वन्ति तव देशनाम् ।
त्यक्तप्राक्तनकर्माण–स्ते भवंति क्षणादऽपि ॥ ४ ॥

त्वन्नामरक्षामंत्रेण, संवर्मितमिदं जगत् ।
अंहः[2]पिशाचै नैंवाऽतः, परं देव ! प्रसिष्यते ॥ ५ ॥

कस्याऽपि न भयं नाथ, ! त्वयि विश्वाऽभयप्रदे ।
स्वस्थानयायिनो मे तु, त्वद्वियोगभवं भयम् ॥ ६ ॥

---

* समवसरणभुवि शक्रादिसंदब्धः ।

अपि शाश्वतवैरान्धा, बहिरंगा न केवलम् ।
शाम्यंति तेऽन्तिके स्वामि-न्नंतरंगा अपि द्विषः ॥ ७ ॥

ऐहिकाऽऽमुष्मिकाऽभीष्ट-दानकामगवी प्रभो ! ।
त्वन्नामस्मृतिरेवाऽस्तु, यत्र तत्र स्थितस्य मे ॥ ८ ॥

४८

*श्रीशान्तिनाथ-जिनस्तवः

देवाधिदेवाय जगत्-तायिने परमात्मने ।
श्रीमते शांतिनाथाय, षोडशायाऽर्हते नमः ॥ १ ॥

श्रीशांतिनाथ ! भगवन् !, भवांऽभोनिधितारण ! ।
सर्वार्थसिद्धमंत्राय, त्वन्नाम्नेऽपि नमोनमः ॥ २ ॥

ये तवाऽष्टविधां पूजां, कुर्वंति परमेश्वर ! ।
अष्टाऽपि सिद्धयस्तेषां, करस्था अणिमादयः ॥ ३ ॥

धन्याऽन्यक्षीणि यानि त्वां, पश्यंति प्रतिवासरम् ।
तेभ्योऽपि धन्यं हृदयं, तद्दृष्टो येन धार्यसे ॥ ४ ॥

देव ! त्वत्पादसंस्पर्शा-दपि स्यान्निर्मलो जनः ।
अयोऽपि हेमीभवति, स्पर्शवेधिरसान्न किम् ? ॥ ५ ॥

---

* दशमुखः स्वगृहचैत्ये स्तौति ।

त्वत्पादाऽब्जप्रणामेन, नित्यं भूलुंठनैः प्रभो ! ।
शृंगारतिलकीभूयान्, मम भाले [5]किणावलिः ॥ ६ ॥

पदार्थैः पुष्पगंधाद्यै-रुपहारीकृतैस्तव ।
प्रभो ! भवतु मद्राज्य-संपद्वल्लेः सदा फलम् ॥ ७ ॥

भूयो भूयः प्रार्थये त्वा-मिदमेव जगद्विभो ! ।
भगवन् ! भूयसी भूयात्-त्वयि भक्ति र्भवे भवे ॥ ८ ॥

४९

*श्रीनमिनाथ-जिनस्तवः

[6]व्याहर्ता मोक्षमार्गस्य, संहर्ता सर्वकर्मणाम् ।
प्रहर्ता च कषायाणां, जय त्वं परमेश्वर ! ॥ १ ॥

कुमतस्याऽपनेतारं, नेतारं जगतामपि ।
सद्बोधस्य प्रणेतारं, त्वां नमामि जगद्गुरो ! ॥ २ ॥

विश्वैश्वर्यस्याऽधिकर्त्रा, न्यक्कर्त्रा विश्वपाप्मनाम् ।
[7]अविकर्त्रोपकर्त्रा च, सनाथं भवता जगत् ॥ ३ ॥

---

* मेरौ शक्रसंदब्धः ।

धर्मबीजसमुद्धर्त्रे, धर्त्रेऽतिशयसंपदाम् ।
श्रुतस्कन्धविधात्रे च, भगवन् ! भवते नमः ॥ ४ ॥

प्रत्यादेष्टुः कुमार्गाणा–मादेष्टुर्मुक्तिवर्त्मनः ।
धर्मः प्रभविता त्वत्त–उपदेष्टुरतः परम् ॥ ५ ॥

नव्यतीर्थप्रतिष्ठातु–रनुष्ठातुस्तपःश्रियाम् ।
प्रभो ! जगदधिष्ठातु–र्भवतः किंकरा वयम् ॥ ६ ॥

8
आदातर्यपवर्गस्य, विश्वस्याऽभयदातरि ।
त्वयि त्रैलोक्यशरणे, प्रपन्नशरणोऽस्म्यहम् ॥ ७ ॥

अस्मिन् भवे यथाभूस्त्वं, प्रभुर्मम जगत्पते ! ।
भवाऽन्तरेष्वपि तथा, भूया नाऽन्यो मनोरथः ॥ ८ ॥

५०

*श्री नमिनाथ-जिनस्तवः

केवलज्ञानसंज्ञेन, चक्षुषा वीक्षसेऽखिलम् ।
जगदेतत्तदेवं ते, त्रिनेत्राय नमः प्रभो ! ॥ १ ॥

पंचत्रिंशदतिशय–वचसे परमेष्ठिने ।
चतुस्त्रिंशदतिशयाऽ–न्विताय भवते नमः ॥ २ ॥

* समवसरणभुवि शक्रेन्द्रसन्दब्धः ।

माल[1]वकैशिकीमुख्य-ग्रामरागमनोरमाम् ।
सर्वभाषानुगां नाथ !, तव वाचमुपास्महे ॥ ३ ॥

त्वद्दर्शनात् प्रणश्यंति, कर्मपाशाः शरीरिणाम् ।
ताक्ष्य[2]ऽवलोकनान्नाग-पाशा इव दृढा अपि ॥ ४ ॥

त्वद्दर्शनाद्देहभाजो-ऽधिरोहंति शनैः शनैः ।
निश्रेणिमिव मोक्षस्य, गुणस्थान[3]क्रमालिकाम् ॥ ५ ॥

स्मृतः श्रुतः स्तुतो ध्यातो, दृष्टः स्पृष्टो नमस्कृतः ।
येन तेन प्रकारेण, स्वामिन् ! भवसि शर्मणे ॥ ६ ॥

स्वामिन् ! पुण्यानुबंधीनि, पूर्वपुण्यानि नः खलु ।
यस्त्वं दृग्गोचरं नीतो-ऽसाधारणगतिप्रदः ॥ ७ ॥

यथा तथा[4] ममास्त्वन्यत्, स्वर्गराज्यादि सर्वतः ।
मा जातु हृदयाद्यान्तु, नाथ ! त्वद्देशनागिरः ॥ ८ ॥

५१

*श्रीनेमिनाथ-जिनस्तवः

शिवगामिन् ! शिवाकुक्षि-शुक्तिमुक्तामणे ! प्रभो ! ।
शिवानामेकनिलय ! भगवँस्त्वं शिवंकरः ॥ १ ॥

---

* मेरौ जन्मस्नात्रावसरे शक्रसंदृब्धः ।

तुभ्यमभ्यर्णमोक्षाय[1], समक्षाऽशेषवस्तवे ।
विविधर्द्धिनिधानाय, द्वाविंशायाऽर्हते नमः ॥ २ ॥

हरिवंशः पवित्रोऽयं, पवित्रा भारती च भूः ।
यस्मिँश्चरमदेहस्त्व–मवातारीर्जगद्गुरो ! ॥ ३ ॥

कृपाया एक आधारो, ब्रह्मणश्चैकमाऽऽस्पदम् ।
ऐश्वर्यस्याऽऽश्रयश्चैक–स्त्वमेव त्रिजगद्गुरो ! ॥ ४ ॥

भवतो दर्शनेनैवाऽ[2]–तिमहिम्ना जगत्पते ! ।
देहिनां मोहविध्वंसा–द्देशनाकर्म सिध्यति ॥ ५ ॥

विनैवकारणं त्राता[3], विना हेतुं च वत्सलः ।
विना निमित्तं भर्ता त्वं, हरिवंशैकमौक्तिकः ॥ ६ ॥

अद्याऽपराजितादेतद्–भरतक्षेत्रमुत्तमम् ।
शर्मणे यत्र लोकस्य, बोधिदस्त्वमवातरः[4] ॥ ७ ॥

नित्यं भजंतु त्वत्पादा, मानसे मम हंसताम् ।
चरितार्था भवतु च, त्वद्गुणस्तवनेन गीः ॥ ८ ॥

५२

*श्रीनेमिनाथ-जिनस्तवः

नमस्तुभ्यं जगन्नाथ !, विश्वविश्वोपकारिणे ।
आजन्मब्रह्मनिष्ठाय, दयावीराय तायिने ॥ १ ॥

दिष्ट्या कर्माणि घातिनि, स्वामिन् ! घातितवानसि ।
शुक्लध्यानेन दिवसै-श्चतुःपञ्चाशतापि हि ॥ २ ॥

न केवलं यदुकुलं, त्वया नाथ ! विभूषितम् ।
इदं जगत्त्रयमपि, केवलाऽऽलोकभास्वता ॥ ३ ॥

अस्ताघो[1] यस्तथा स्वामि-न्नपारश्च भवांबुधिः ।
गुल्फगोष्पदमात्रं स, स्यात्त्वत्पादप्रसादतः ॥ ४ ॥

सर्वस्य भिद्यते स्वान्तं, ललनाललितैः[2] प्रभो ! ।
अभेद्यो वज्रहृदय-स्त्वत्तो नान्यो जगत्यपि ॥ ५ ॥

त्वयि व्रतनिषेधिन्यो, बन्धूनां[3] ता गिरोऽधुना ।
भवन्ति पश्चात्तापाय, तवर्द्धिं पश्यतामिमाम् ॥ ६ ॥

दुराग्रहै[4]र्बन्धुवर्गै-र्दिष्ट्या न स्खलितस्तदा ।
जगत्पुण्यैरस्खलितो-त्पन्नकेवल ! पाहि नः ॥ ७ ॥

---

* समवसरणभुवि शक्रसंदब्धः ।

यत्र तत्र स्थितस्याऽपि, यद्वा तद्वाऽपि कुर्वतः ।
त्वमेव देव ! हृदये, भूयाः किमपरेण मे ?　॥ ८ ॥

५३

*श्रीपार्श्वनाथ-जिनस्तवः

नमः प्रियंगुवर्णाय, जगतः प्रियहेतवे ।
तुभ्यं दुस्तरसंसार-पारावारैकसेतवे　॥ १ ॥

ज्ञानरत्नैककोशाय, [1]व्याकोशेन्दीवरत्विषे ।
भव्याऽरविन्दांऽशुमते, तुभ्यं भगवते नमः　॥ २ ॥

फणभृल्लक्ष्मणेऽष्टाग्र-सहस्रनर[3]लक्ष्मणे ।
तुभ्यं नमः कर्मतमो-विध्वंसशशलक्ष्मणे　॥ ३ ॥

जगत्रयपवित्राय, ज्ञानत्रितयधारिणे ।
कर्मस्थलखनित्राय, सुचरित्राय ते नमः　॥ ४ ॥

सर्वाऽतिशयपात्रायाऽ-तिमात्रकरुणावते ।
सर्वसंपद[2]मत्राय, नमस्ते परमात्मने　॥ ५ ॥

---

* मेरौ जन्मस्नात्राऽवसरे शक्रसन्दृब्धः ।

दूरीभूतकषायाय, मुदितक्षीरवार्धये ।
रागद्वेषविमुक्ताय, नमस्ते मुक्तिगामिने ॥ ६ ॥

फलं त्वत्पादसेवाया, यद्यस्ति परमेश्वर ! ।
तदैतदेव मे भूयात्, त्वयि भक्तिर्भवे भवे ॥ ७ ॥

५४

*श्रीपार्श्वनाथ-जिनस्तवः

सर्वत्रापि भवद्भूत-भाविभावाऽवभासकृत् ।
भवतां केवलज्ञान-मिदं जयति निर्मलम् ॥ १ ॥

अस्मिन्नपारे संसार-पारावारे शरीरिणाम् ।
यानपात्रं त्वमेवाऽसि, निर्यामोऽपि[3] त्वमेव हि ॥ २ ॥

सर्ववासरराजोऽयं, वासरस्त्रिजगत्पते ! ।
त्वत्पाददर्शनमहो-त्सवो यत्राऽजनिष्ट नः ॥ ३ ॥

विवेकदृष्टिलुंटाक-मज्ञानतिमिरं नृणाम् ।
त्वद्देशनौषधिरसं, विना न हि निवर्तते ॥ ४ ॥

नद्यामिव नवं तीर्थं, तव तीर्थं भवेऽधुना ।
उत्तारणाय भवति, प्राणिनामहहो[4]त्सवः ॥ ५ ॥

---

* केवळज्ञानप्राप्त्यनन्तरं शक्रेन्द्रसंदृब्धः ।

सिद्धाऽनन्तचतुष्काय, सर्वाऽतिशयशालिने ।
औदासिन्यनिषण्णायै–कप्रसन्नाय ते नमः ॥ ६ ॥

अत्यन्तोपद्रवकरे, प्रतिजन्म दुरात्मनि ।
मेघमालिनि करुणा, करुणा कुत्र ते न हि ॥ ७ ॥

तिष्ठतो यत्र कुत्राऽपि, गच्छतो यत्र कुत्रचित् ।
त्वत्पादपद्मशरणं, माऽपयातु हृदो मम ॥ ८ ॥

५५

*श्रीमहावीरस्वामि-जिनस्तवः

नमोऽर्हते भगवते, स्वयंबुद्धाय वेधसे ।
तीर्थंकरायाऽऽदिकृते, पुरुषेषूत्तमाय ते ॥ १ ॥

नमोलोकप्रदीपाय, लोकप्रद्योतकारिणे ।
लोकोत्तमाय लोकाऽधी–शाय लोकहिताय ते ॥ २ ॥

नमस्ते पुरुषवर–पुंडरीकाय शंभवे ।
पुरुषसिंहाय पुरु–षैक गन्धद्विपाय ते ॥ ३ ॥

चक्षुर्दायाऽभयदाय, बोधिदायाऽध्वदायिने ।
धर्मदाय धर्मदेष्ट्रे, नमः शरणदायिने ॥ ४ ॥

---

* समवसरणभुवि शक्रेन्द्रसन्दृब्धः ।

धर्मसारथये धर्म-नेत्रे धर्मैकचक्रिणे ।
व्यावृत्तच्छद्मने सम्यग्-ज्ञानदर्शनधारिणे ॥ ५ ॥

जिनाय ते जापकाय, तीर्णाय तारकाय च ।
विमुक्ताय मोचकाय, नमो बुद्धाय बोधिने ॥ ६ ॥

सर्वज्ञाय नमस्तुभ्यं, स्वामिने सर्वदर्शिने ।
सर्वाऽतिशयपात्राय, कर्माष्टकनिषूदिने ॥ ७ ॥

तुभ्यं क्षेत्राय पात्राय, तीर्थाय परमात्मने ।
स्याद्वादवादिने वीत-रागाय मुनये नमः ॥ ८ ॥

पूज्यानामपि पूज्याय, महद्भ्योऽपि महीयसे ।
आचार्याणामाऽऽचार्याय, ज्येष्टानां ज्यायसे नमः ॥ ९ ॥

नमो विश्वंभुवे तुभ्यं, योगिनाथाय योगिने ।
पावनाय पवित्रायाऽ-नुत्तरायोत्तराय च ॥ १० ॥

संप्रक्षालनाय योगा-चार्याय प्रवराय च ।
अग्राय वाचस्पतये, मांगल्याय नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥

नमः परस्तादुदिता-यैकवीराय भास्वते ।
ॐ भूर्भुवःस्वरितिवाक्-स्तवनीयाय ते नमः ॥ १२ ॥

नमः सर्वजनीनाय[1], सर्वार्थायाऽमृताय च ।
उदितब्रह्मचर्यायाऽऽ-प्ताय पारंगताय ते ॥ १३ ॥

नमस्ते दक्षिणीयाय, निर्विकाराय तायिने ।
वज्रऋषभनाराच-वपुषे तत्त्वदृश्वने [2] ॥ १४ ॥

नमः कालत्रयज्ञाय, जिनेन्द्राय स्वयंभुवे ।
ज्ञानबलवीर्यतेजः-शक्त्यैश्वर्यमयाय ते ॥ १५ ॥

आदिपुंसे नमस्तुभ्यं, नमस्ते परमेष्ठिने ।
नमस्तुभ्यं महेशाय, ज्योतिस्तत्त्वाय ते नमः ॥ १६ ॥

तुभ्यं सिद्धार्थराजेन्द्र-कुलक्षीरोदधीन्दवे ।
महावीराय धीराय, त्रिजगत्स्वामिने नमः ॥ १७ ॥

५६

*श्रीनंदनमहामुनेः अन्तिमाराधना

ज्ञानाचारोऽष्टधा प्रोक्तो, यः कालविनयादिकः ।
तत्र मे कोऽप्यतिचारो, योऽभून्निन्दामि तं त्रिधा ॥ १ ॥

यः प्रोक्तो दर्शनाचारो-ऽष्टधा निःशंकितादिकः ।
तत्र मे योऽतिचारोऽभूत्, त्रिधाऽपि व्युत्सृजामि तम् ॥२॥

---

* पञ्चविंशतितमे भवे श्रीमहावीरपरमात्मनो जीवस्य ।

या कृता प्राणिनां हिंसा, सूक्ष्मा वा बादराऽपि वा ।
मोहाद्वा लोभतो वाऽपि, व्युत्सृजामि त्रिधाऽपि ताम् ॥ ३ ॥

हास्यभीलोभक्रोधाद्यै–र्यन्मृषा भाषितं मया ।
तत्सर्वमपि निन्दामि, प्रायश्चित्तं चरामि च ॥ ४ ॥

अल्पं भूरि च यत्क्वापि, परद्रव्यमदत्तकम् ।
आत्तं रागादथ द्वेषात्–तत्सर्वं व्युत्सृजाम्यहम् ॥ ५ ॥

तैरश्चं मानुषं दिव्यं, मैथुनं मयका पुरा ।
यत्कृतं त्रिविधेनाऽपि त्रिविधं व्युत्सृजामि तत् ॥ ६ ॥

बहुधा यो धनधान्य–पश्वादीनां परिग्रहः ।
लोभदोषान्मयाऽकारि, व्युत्सृजामि त्रिधाऽपि तम् ॥ ७ ॥

पुत्रे कलत्रे मित्रे च, बन्धौ धान्ये धने गृहे ।
अन्येष्वपि ममत्वं य–त्तत्सर्वं व्युत्सृजाम्यहम् ॥ ८ ॥

इन्द्रियैरभिभूतेन, य आहारश्चतुर्विधः ।
मया रात्रावुपाभोजि, निन्दामि तमपि त्रिधा ॥ ९ ॥

क्रोधो मानो माया लोभो, रागो द्वेषः कलिस्तथा ।
पैशून्यं परनिर्वादोऽ–भ्याख्यानमपरं च यत् ॥ १० ॥

चारित्राचारविषयं, दुष्टमाऽऽचरितं मया ।
तदहं त्रिविधेनाऽपि, व्युत्सृजामि समन्ततः ॥ ११ ॥

यस्तपःस्वतिचारोऽभूद्, बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ।
त्रिविधं त्रिविधेनाऽपि, निन्दामि तमहं खलु ॥ १२ ॥

धर्माऽनुष्ठानविषये, यद्वीर्यं गोपितं मया ।
वीर्याचाराऽतिचारं च, निन्दामि तमपि त्रिधा ॥ १३ ॥

हतो दुरुक्तश्च मया, यो यस्याऽह्यारि किञ्चन ।
यस्याऽपाकारि किंचिद्वा, मम क्षाम्यतु सोऽखिलः ॥१४॥

यश्च मित्रममित्रो वा, स्वजनोऽरिजनोऽपि वा ।
सर्वः क्षाम्यतु मे सर्वं, सर्वेष्वपि समोऽस्म्यहम् ॥ १५ ॥

तिर्यक्त्वे सति तिर्यञ्चो, नारकत्वे च नारकाः ।
अमरा अमरत्वे च, मानुषत्वे च मानुषाः ॥ १६ ॥

ये मया स्थापिता दुःखे, सर्वे क्षाम्यन्तु ते मम ।
क्षाम्याम्यहमपि तेषां, मैत्री सर्वेषु मे खलु ॥ १७ ॥

जीवितं यौवनं लक्ष्मी, रूपं प्रियसमागमः ।
चलं सर्वमिदं वात्या[1]–नर्तिताऽब्धितरंगवत् ॥ १८ ॥

व्याधिजन्मजरामृत्यु–ग्रस्तानां प्राणिनामिह ।
विना जिनोदितं धर्मं, शरणं कोऽपि नाऽपरः ॥ १९ ॥

सर्वेऽपि जीवाः स्वजना, जाताः परजनाश्च ते ।
विदधीत प्रतिबन्धं, तेषु को हि मनागपि ॥ २० ॥

एक उत्पद्यते जन्तु-रेक एव विपद्यते ।
सुखान्यनुभवत्येको, दुःखान्यपि स एव हि ॥ २१ ॥

अन्यद्वपुरिदं ताव-दन्यद्धान्यधनादिकम् ।
बन्धवोऽन्येऽन्यश्च जीवो, वृथा मुह्यति बालिशः[2] ॥ २२ ॥

वसारुधिरमांसाऽस्थि-यकृद्विण्मूत्रपूरिते ।
वपुष्यशुचिनिलये, मूर्च्छां कुर्वीत कः सुधीः ॥ २३ ॥

अवक्रयाऽऽत्तवेश्मेव,[3] मोक्तव्यमऽचिरादपि ।
लालितं पालितं वाऽपि, विनश्वरमिदं वपुः ॥ २४ ॥

धीरेण कातरेणाऽपि, मर्तव्यं खलु देहिना ।
तन्म्रियेत तथा धीमान्, न म्रियेत यथा पुनः ॥ २५ ॥

अर्हन्तो मम शरणं, शरणं सिद्धसाधवः ।
उदीरितः केवलिभि-र्धर्मः शरणमुच्चकैः ॥ २६ ॥

जिनधर्मो मम माता, गुरुस्तातोऽथ सोदराः ।
साधवः साधर्मिकाश्च, बन्धवोऽन्यत्तु जालवत् ॥ २७ ॥

ऋषभादींस्तीर्थकरान्-नमस्याम्यखिलानऽपि ।
भरतैरावतविदे-हाऽर्हतोऽपि नमाम्यहम् ॥ २८ ॥

तीर्थकृद्भ्यो नमस्कारो, देहभाजां भवच्छिदे ।
भवति क्रियमाणः स, बोधिलाभाय चोच्चकैः ॥ २९ ॥

सिद्धेभ्यश्च नमस्कारं, भगवद्भ्यः करोम्यहम् ।
कर्मैधो ऽदाहि यैर्ध्याना॒ऽ-ग्निना भवसहस्रजम् ॥ ३० ॥

आचार्येभ्यः पञ्चविधाऽऽ-चारेभ्यश्च नमो नमः ।
यै र्धार्यते प्रवचनं, भवच्छेदे सदोद्यतैः ॥ ३१ ॥

श्रुतं बिभ्रति ये सर्वं, शिष्येभ्यो व्याहरन्ति च ।
नमस्तेभ्यो महात्मभ्य-उपाध्यायेभ्य उच्चकैः ॥ ३२ ॥

शीलव्रतसनाथेभ्यः, साधुभ्यश्च नमो नमः ।
भवलक्षसन्निबद्धं, पापं निर्नाशयन्ति ये ॥ ३३ ॥

सावद्ययोगमुपधिं, बाह्यमाऽऽभ्यन्तरं तथा ।
यावज्जीवं त्रिविधेन, त्रिविधं व्युसृजाम्यहम् ॥ ३४ ॥

चतुर्विधाऽऽहारमपि, यावज्जीवं त्यज्याम्यहम् ।
उच्छ्वासे चरमे देह-मपि हि व्युत्सृजाम्यहम् ॥ ३५ ॥

दुष्कर्मगर्हणां जन्तु-क्षमणां भावनामपि ।
चतुःशरणं च नम-स्कारं चानशनं तथा ॥ ३६ ॥

॥ ॐ ऐं नमः ॥

द्वितीयः अध्यायः (२)

[श्री वीतरागस्तोत्रादि-जिनस्तवाः]

वीतरागस्तोत्रम् ।

१

यः परात्मा परञ्ज्योतिः, परमः परमेष्ठिनाम् ।
आदित्यवर्णं तमसः, परस्तादाऽऽमनन्ति यम् ॥ १ ॥

सर्वे येनोदमूल्यन्त, समूलाः क्लेशपादपाः ।
मूर्ध्ना यस्मै नमस्यन्ति, सुराऽसुरनरेश्वराः ॥ २ ॥

प्रावर्त्तन्त यतो विद्याः, पुरुषार्थप्रसाधिकाः ।
यस्य ज्ञानं भवद्भाविभूतभावाऽवभासकृत् ॥ ३ ॥

यस्मिन्विज्ञानमानन्दं, ब्रह्म चैकाऽऽत्मतां गतम् ।
[1] स श्रद्धेयः स च ध्येयः, प्रपद्ये शरणं च तम् ॥ ४ ॥

तेन स्यां नाथवाँस्तस्मै, स्पृहयेयं समाहितः ।
ततः कृतार्थो भूयासं, भवेयं तस्य किङ्करः ॥ ५ ॥

तत्र स्तोत्रेण कुर्यां च, पवित्रां स्वां सरस्वतीम् ।
इदं हि भवकान्तारे, जन्मिनां जन्मनः फलम्   ॥ ६ ॥

काहं पशोरपि पशुर्वीतरागस्तवः क्व च ? ।
उत्तितीर्षुररण्यानीं,[2] पद्भ्यां पङ्गुरिवास्म्यतः   ॥ ७ ॥

तथापि श्रद्धामुग्धोऽहं, नोपालभ्यः स्खलन्नपि ।
विश्रृङ्खलापि वाग्वृत्तिः, श्रद्दधानस्य[3] शोभते   ॥ ८ ॥

२

[4] प्रियङ्गुस्फटिकस्वर्णपद्मरागाञ्जनप्रभः ।
प्रभो ! तवाऽधौतशुचिः,[5] कायः कमिव नाऽक्षिपेत् ? ॥१॥

मन्दारदामवन्नित्यमवासितसुगन्धिनि ।
तवाऽङ्गे भृङ्गतां यान्ति, नेत्राणि सुरयोषिताम्   ॥ २ ॥

दिव्याऽमृतरसाऽऽस्वादपोषप्रतिहता इव ।
समाविशन्ति ते नाथ !, नाऽङ्गे रोगोरगव्रजाः   ॥ ३ ॥

[6] त्वय्यादर्शतलालीन-प्रतिमाप्रतिरूपके ।
क्षरत्स्वेदविलीनत्वकथाऽपि वपुषः कुतः ?   ॥ ४ ॥

न केवलं रागमुक्तं[7], वीतराग ! मनस्तव ।
वपुःस्थितं रक्तमपि, क्षीरधारासहोदरम् ॥ ५ ॥

जगद्विलक्षणं किं वा, तवान्यद्वक्तुमीश्महे ? ।
यदविस्रमबीभत्सं[8], शुभ्रं मांसमपि प्रभो ! ॥ ६ ॥

जलस्थलसमुद्भूताः, सन्त्यज्य सुमनःस्रजः ।
तव निःश्वाससौरभ्य-मनुयान्ति मधुव्रताः ॥ ७ ॥

लोकोत्तरचमत्कारकरी तव भवस्थितिः ।
यतो नाऽऽहारनीहारौ, गोचरश्चर्म[9]चक्षुषाम् ॥ ८ ॥

३

सर्वाऽभिमुख्यतो[10] नाथ !, तीर्थकृन्नामकर्मजात् ।
सर्वथा सम्मुखीनस्त्वमानन्दयसि यत्प्रजाः ॥ १ ॥

यद्योजनप्रमाणेऽपि, धर्मदेशनसद्मनि ।
सम्मान्ति कोटिशस्तिर्यग्नृदेवाः सपरिच्छदाः ॥ २ ॥

तेषामेव स्वस्वभाषापरिणाममनोहरम् ।
अप्येकरूपं वचनं, यत्ते धर्माऽवबोधकृत् ॥ ३ ॥

साग्रेऽपि योजनशते, पूर्वोत्पन्ना गदाम्बुदाः[11] ।
यदञ्जसा विलीयन्ते, त्वद्विहाराऽनिलोर्मिभिः ॥ ४ ॥

नाऽविर्भवन्ति यद्भूमौ, मूषकाः शलभाः शुकाः ।
क्षणेन क्षितिपक्षिप्ता[1] अनीतय इवेतयः ॥ ५ ॥

स्त्रीक्षेत्र[2]पद्रादिभवो, यद्वैराग्निः प्रशाम्यति ।
त्वत्कृपापुष्करावर्त्तवर्षादिव भुवस्तले ॥ ६ ॥

त्वत्प्रभावे भुवि भ्राम्यत्यशिवोच्छेद[3]डिण्डिमे ।
सम्भवन्ति न यन्नाथ !, मारयो भुवनाऽरयः ॥ ७ ॥

कामवर्षिणि लोकानां, त्वयि विश्वैकवत्सले ।
अतिवृष्टि[4]रवृष्टिर्वा, भवेद्यन्नोपतापकृत् ॥ ८ ॥

स्वराष्ट्र-परराष्ट्रेभ्यो, यत्क्षुद्रोपद्रवा द्रुतम् ।
विद्रवन्ति त्वत्प्रभावात्, सिंहनादादिव द्विपाः ॥ ९ ॥

यत्क्षीयते च दुर्भिक्षं, क्षितौ विहरति त्वयि ।
सर्वाऽद्भुतप्रभावाढ्ये, जङ्गमे कल्पपादपे[5] ॥ १० ॥

यन्मूर्ध्नः पश्चिमे भागे, जितमार्त्तण्डमण्डलम् ।
मा भूद्वपुर्दुरालोकमितीवोत्पिण्डितं[6] महः ॥ ११ ॥

स एष योगसाम्राज्यमहिमा विश्वविश्रुतः ।
कर्मक्षयोत्थो भगवन् !, कस्य नाश्चर्यकारणम् ? ॥ १२ ॥
अनन्तकालप्रचितमनन्तमपि सर्वथा ।
त्वत्तो नाऽन्यः कर्मकक्षमुन्मूलयति[7] मूलतः ॥ १३ ॥
तथोपाये प्रवृत्तस्त्वं, क्रियासमभिहारतः[8] ।
यथाऽनिच्छन्नुपेयस्य, परां श्रियमऽशिश्रियः ॥ १४ ॥
मैत्रीपवित्रपात्राय[9], मुदिताऽऽमोदशालिने ।
कृपोपेक्षाप्रतीक्षाय, तुभ्यं योगात्मने नमः ॥ १५ ॥

४

मिथ्यादृशां युगान्ताऽर्कः, सुदृशाममृताञ्जनम् ।
तिलकं तीर्थकृल्लक्ष्म्याः, पुरश्चक्रं तवैधते ॥ १ ॥
एकोऽयमेव जगति, स्वामीत्याख्यातुमुच्छ्रिता ।
उच्चैरिन्द्रध्वजव्याजात्तर्जनी[10] जम्भविद्विषा ॥ २ ॥
यत्र पादौ पदं धत्तस्तव तत्र सुरासुराः ।
किरन्ति पङ्कजव्याजाच्छ्रियंपङ्कजवासिनीम् ॥ ३ ॥
दानशीलतपोभावभेदाद्धर्मं चतुर्विधम् ।
मन्ये युगपदाऽऽख्यातुं, चतुर्वक्त्रोऽभवद्भवान् ॥ ४ ॥

त्वयि दोषत्रयात्त्रातुं, प्रवृत्ते भुवनत्रयीम् ।
प्राकारत्रितयं चक्रुस्त्रयोऽपि त्रिदिवौकसः ॥ ५ ॥

अधोमुखाः कण्टकाः स्युर्धात्र्यां विहरतस्तव ।
भवेयुः सम्मुखीनाः किं, तामसास्तिग्मरोचिषः? ॥ ६ ॥

केशरोमनखश्मश्रु, तवाऽवस्थितमित्ययम् ।
बाह्योऽपि योगमहिमा, नाप्तस्तीर्थंकरैः परैः ॥ ७ ॥

शब्दरूपरसस्पर्शगन्धाख्याः पञ्च गोचराः ।
भजन्ति प्रातिकूल्यं न, त्वदऽग्रे तार्किका इव ॥ ८ ॥

त्वत्पादावृतवः सर्वे, युगपत्पर्युपासते ।
आकालकृतकन्दर्पसाहायकभयादिव ॥ ९ ॥

सुगन्ध्युदकवर्षेण, दिव्यपुष्पोत्करेण च ।
भावित्वत्पादसंस्पर्शां, पूजयन्ति भुवं सुराः ॥ १० ॥

जगत्प्रतीक्ष्य ! त्वां यान्ति, पक्षिणोऽपि प्रदक्षिणम् ।
का गतिर्महतां तेषां, त्वयि ये वामवृत्तयः? ॥ ११ ॥

पञ्चेन्द्रियाणां दौःशील्यं, क्व भवेद्भवदन्तिके ? ।
एकेन्द्रियोऽपि यन्मुञ्चत्यनिलः प्रतिकूलताम् ॥ १२ ॥

मूर्ध्ना नमन्ति तरवस्त्वन्माहात्म्यचमत्कृताः ।
तत्कृतार्थं शिरस्तेषां, व्यर्थं मिथ्यादृशां पुनः ॥ १३ ॥

जघन्यतः कोटिसङ्ख्यास्त्वां सेवन्ते सुरासुराः ।
भाग्यसम्भारलभ्येऽर्थे, न मन्दा अप्युदासते ॥ १४ ॥

५

गायन्निवालिविरुतैर्नृत्यन्निव चलैर्दलैः ।
त्वद्गुणैरिव रक्तोऽसौ, मोदतेऽशोकपादपः ॥ १ ॥

आयोजनं सुमनसोऽधस्तान्निक्षिप्तबन्धनाः ।
जानुदघ्नीः सुमनसो, देशनोर्व्यां किरन्ति ते ॥ २ ॥

मालवकैशिकीमुख्यग्रामरागपवित्रितः ।
तव दिव्यो ध्वनिः पीतो, हर्षोद्ग्रीवैर्मृगैरपि ॥ ३ ॥

तवेन्दुधामधवला, चकास्ति चमरावली ।
हंसालिरिव वक्त्राब्जपरिचर्यापरायणा ॥ ४ ॥

मृगेन्द्रासनमारूढे, त्वयि तन्वति देशनाम् ।
श्रोतुं मृगाः समायान्ति, मृगेन्द्रमिव सेवितुम् ॥ ५ ॥

भासां चयैः परिवृतो, ज्योत्स्नाभिरिव चन्द्रमाः ।
चकोराणामिव दृशां, ददासि परमां मुदम् ॥ ६ ॥

दुन्दुभिर्विश्वविश्वेश ! पुरो व्योम्नि प्रतिध्वनन् ।
जगत्याप्तेषु ते प्राज्यं, साम्राज्यमिव शंसति ॥ ७ ॥

तवोर्ध्वमूर्ध्वं पुण्यर्द्धिक्रमसब्रह्मचारिणी ।
छत्रत्रयी त्रिभुवनप्रभुत्वप्रौढिशंसिनी ॥ ८ ॥

एतां चमत्कारकरीं, प्रातिहार्यश्रियं तव ।
चित्रीयन्ते न के दृष्ट्वा, नाथ ! मिथ्यादृशोऽपि हि ? ॥९॥

६

लावण्यपुण्यवपुषि, त्वयि नेत्रामृताऽञ्जने ।
माध्यस्थ्यमपि दौःस्थ्याय, किं पुनर्द्वेषविप्लवः ? ॥ १ ॥

तवापि प्रतिपक्षोऽस्ति, सोऽपि कोपादिविप्लुतः ।
अनया किंवदन्त्यापि, किं जीवन्ति विवेकिनः ? ॥ २ ॥

विपक्षस्ते विरक्तश्चेत्स त्वमेवाथ रागवान् ।
न विपक्षो विपक्षः किं, खद्योतो द्युतिमालिनः ? ॥ ३ ॥

स्पृहयन्ति त्वद्योगाय, यत्तेऽपि लवसत्तमाः ।
योगमुद्रादरिद्राणां, परेषां तत्कथैव का ? ॥ ४ ॥

त्वां [1] प्रपद्यामहे नाथं, त्वां स्तुमस्त्वामुपास्महे ।
त्वत्तो हि न परस्त्राता, किं ब्रूमः ? किमु कुर्महे ? ॥ ५ ॥

स्वयं मलीमसाचारैः, प्रतारणपरैः परैः ।
वञ्चयते जगदप्येतत्कस्य पूत्कुर्महे पुरः ? ॥ ६ ॥

नित्यमुक्तान् [2]जगज्जन्मक्षेमक्षयकृतोद्यमान् ।
वन्ध्यास्तनन्धयप्रायान्, को देवाँश्चेतनः श्रयेत् ? ॥ ७ ॥

कृतार्था [3]जठरोपस्थदुःस्थितैरपि दैवतैः ।
भवादृशान्निन्हुवते, हाहा ! देवास्तिकाः परे ॥ ८ ॥

खपुष्पप्रायमुत्प्रेक्ष्य,[4] किञ्चिन्मानं प्रकल्प्य च ।
सम्मान्ति देहे गेहे वा, न गेहेनर्दिनः परे ॥ ९ ॥

कामराग[5]स्नेहरागावीषत्करनिवारणौ ।
दृष्टिरागस्तु पापीयान्, दुरुच्छेदः सतामपि ॥ १० ॥

प्रसन्नमास्यं मध्यस्थे, दृशौ लोकम्पृणं वचः ।
इति प्रीतिपदे बाढं, [6]मूढास्त्वय्यप्युदासते ॥ ११ ॥

तिष्ठेद्वायुर्द्रवेदद्रिर्ज्वलेज्जलमपि क्वचित् ।
तथापि ग्रस्तो रागाद्यैर्नाप्तो भवितुमर्हति ॥ १२ ॥

७

धर्माधर्मौ विना[7] नाङ्गं, विनाङ्गेन मुखं कुतः ? ।
मुखाद्विना न वक्तृत्वं, तच्छास्तारः परे कथम् ? ॥१॥

[8] अदेहस्य जगत्सर्गे, प्रवृत्तिरपि नोचिता ।
न च प्रयोजनं किञ्चित्स्वातन्त्र्यान्न पराज्ञया ॥ २ ॥

क्रीडया चेत्प्रवर्त्तेत,[9] रागवान्स्यात्कुमारवत् ।
कृपयाऽथ सृजेत्तर्हि, सुख्येव सकलं सृजेत् ॥ ३ ॥

दुःखदौर्गत्यदुर्योनिजन्मादिक्लेश[10]विह्वलम् ।
जनं तु सृजतस्तस्य, कृपालोः का कृपालुता ? ॥ ४ ॥

कर्मापेक्षः स चेत्तर्हि, न स्वतन्त्रोऽस्मदादिवत् ।
कर्मजन्ये च वैचित्र्ये, किमनेन [11]शिखण्डिना ? ॥ ५ ॥

अथ स्वभावतो वृत्तिरवितर्क्या महेशितुः ।
परीक्षकाणां तर्ह्येष, परीक्षाक्षेपडि[12]ण्डिमः ॥ ६ ॥

सर्वभावेषु कर्तृत्वं, ज्ञातृत्वं यदि [13]सम्मतम् ।
मतं नः सन्ति सर्वज्ञा, मुक्ताः कायभृतोऽपि च ॥ ७ ॥

सृष्टिवादकुहेवाकमुन्मुच्येत्यप्रमाणकम्[14] ।
त्वच्छासने रमन्ते ते, येषां नाथ ! प्रसीदसि ॥ ८ ॥

८

सत्त्वस्यैकान्तनित्यत्वे, कृतनाशाऽकृतागमौ[1] ।
स्यातामेकान्तनाशेऽपि, कृतनाशाऽकृतागमौ ॥ १ ॥

आत्मन्येकान्तनित्ये स्यान्न भोगः[2] सुखदुःखयोः ।
एकान्ताऽनित्यरूपेऽपि, न भोगः सुखदुःखयोः ॥ २ ॥

पुण्यपापे[3] बन्धमोक्षौ, न नित्यैकान्तदर्शने ।
पुण्यपापे बन्धमोक्षौ, नानित्यैकान्तदर्शने ॥ ३ ॥

क्रमाक्रमाभ्यां नित्यानां, युज्यतेऽर्थक्रिया[4] नहि ।
एकान्तक्षणिकत्वेऽपि, युज्यतेऽर्थक्रिया नहि ॥ ४ ॥

यदा तु नित्यानित्यत्वरूपता[5] वस्तुनो भवेत् ।
यथाऽऽत्थ भगवन्नैव, तदा दोषोऽस्ति कश्चन ॥ ५ ॥

गुडो हि कफहेतुः स्यान्नागरं पित्तकारणम् ।
द्वयात्मनि न दोषोऽस्ति, गुडनागरभेषजे ॥ ६ ॥

द्वयं विरुद्धं नैकत्रा[6]ऽसत्प्रमाणप्रसिद्धितः ।
विरुद्धवर्णयोगो हि, दृष्टो मेचकवस्तुषु ॥ ७ ॥

विज्ञानस्यैक[7]माकारं, नानाकारकरम्बितम् ।
इच्छँ[10]स्तथागतः प्राज्ञो, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥ ८ ॥

चित्रमेकमनेकं च, रूपं प्रामाणिकं वदन् ।
[11]योगो वैशेषिको वापि, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥ ९ ॥

इच्छन्प्रधानं सत्त्वाद्यैर्विरुद्धैर्गुम्फितं गुणैः ।
साङ्ख्यः[12] सङ्ख्यावतां मुख्यो, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥ १० ॥

विमतिः सम्मतिर्वापि, चार्वाकस्य न मृग्यते ।
परलोका[13]त्ममोक्षेषु, यस्य मुह्यति शेमुषी ॥ ११ ॥

तेनोत्पादव्ययस्थेमसम्भिन्नं गोरसादिवत् ।
त्वदुपज्ञं कृतधियः, प्रपन्ना वस्तु[14] वस्तुसत् ॥ १२ ॥

९

यत्राल्पेनापि कालेन त्वद्भक्तेः फलमाप्यते ।
कलिकालः स एकोऽस्तु, कृतं कृतयुगादिभिः ॥ १ ॥

सुषमातो दुःषमायां, कृपा फलवती तव ।
मेरुतो मरुभूमौ हि, श्लाघ्या कल्पतरोः स्थितिः ॥ २ ॥

श्राद्धः श्रोता[2] सुधीर्वक्ता, युज्येयातां यदीश ! तत् ।
त्वच्छासनस्य साम्राज्यमेकच्छत्रं कलावपि ॥ ३ ॥

युगान्तरेऽपि चेन्नाथ !, भवन्त्युच्छृङ्खलाः खलाः ।
वृथैव तर्हि कुप्यामः, कलये वामकेलये[3] ॥ ४ ॥

कल्याणसिद्ध्यै साधीयान्, कलिरेव कषोपलः[4] ।
विनाग्निं गन्धमहिमा, काकतुण्डस्य नैधते[5] ॥ ५ ॥

निशि दीपोऽम्बुधौ द्वीपं, मरौ शाखी हिमे शिखी ।
कलौ दुरापः प्राप्तोऽयं, त्वत्पादाब्जरजःकणः ॥ ६ ॥

युगान्तरेषु भ्रान्तोऽस्मि, त्वद्दर्शनविनाकृतः[6] ।
नमोऽस्तु कलये यत्र, त्वद्दर्शनमजायत ॥ ७ ॥

बहुदोषो दोषहीनात्त्वत्तः कलिरशोभत[7] ।
विषयुक्तो विषहरात्फणीन्द्र इव रत्नतः ॥ ८ ॥

१०

मत्प्रसत्तेस्त्वत्प्रसादस्त्वत्प्रसादादियं[1] पुनः ।
इत्यन्योन्याश्रयं भिन्धि, प्रसीद भगवन्! मयि ॥ १ ॥

निरीक्षितुं रूपलक्ष्मीं, सहस्राक्षोऽपि न क्षमः ।
स्वामिन्! सहस्रजिह्वोऽपि शक्तो वक्तुं न ते गुणान् ॥ २ ॥

संशयान्नाथ ! हरसेऽनुत्तरस्वर्गिणामवि ।
अतःपरोपि किं कोपि, गुणःस्तुत्योऽस्ति वस्तुतः[2] ? ॥ ३ ॥

इदं विरुद्धं श्रद्धत्तां, कथमश्रद्दधानकः ? ।
आनन्दसुखसक्तिश्च, विरक्तिश्च[3] समं त्वयि ॥ ४ ॥

नाथेयं घट्यमानापि, दुर्घटा घटतां कथम्[4] ? ।
उपेक्षा सर्वसत्त्वेषु, परमा चोपकारिता ॥ ५ ॥

द्वयं[5] विरुद्धं भगवँस्तव नान्यस्य कस्यचित् ।
निर्ग्रन्थता परा या च, या चोच्चैश्चक्रवर्त्तिता ॥ ६ ॥

नारका अपि मोदन्ते, यस्य कल्याणपर्वसु[6] ।
पवित्रं तस्य चारित्रं, को वा वर्णयितुं क्षमः ? ॥ ७ ॥

शमोऽद्भुतोऽद्भुतं रूपं, सर्वात्मसु कृपाद्भुता ।
सर्वाद्भुतनिधीशाय, तुभ्यं भगवते नमः ॥ ८ ॥

११

निघ्नन्परीषहचमूमुपसर्गान्प्रतिक्षिपन् ।
प्राप्तोऽसि शमसौहित्यं, महतां कापि वैदुषी ॥ १ ॥

अरक्तो भुक्तवान्मुक्तिमद्विष्टो हतवान्द्विषः ।
अहो ! महात्मनां कोऽपि, महिमा लोकदुर्लभः? ॥ २ ॥

सर्वथा निर्जिगीषेण, भीतभीतेन चाऽऽगसः ।
त्वया जगत्त्रयं जिग्ये, महतां कापि चातुरी ॥ ३ ॥

दत्तं न किञ्चित्कस्मैचिन्नाऽऽत्तं किञ्चित्कुतश्चन ।
प्रभुत्वं ते तथाप्येतत्कला कापि विपश्चिताम् ॥ ४ ॥

यद्देहस्यापि[1] दानेन, सुकृतं नार्जितं परैः ।
उदासीनस्य तन्नाथ !, पादपीठे तवालुठत् ॥ ५ ॥

रागादिषु नृशंसेन, सर्वात्मसु कृपालुना ।
भीमकान्तगुणेनोच्चैः[2], साम्राज्यं साधितं त्वया ॥ ६ ॥

सर्वे सर्वात्मनाऽन्येषु[3], दोषास्त्वयि पुनर्गुणाः ।
स्तुतिस्तवेयं चेन्मिथ्या, तत्प्रमाणं सभासदः ॥ ७ ॥

महीयसामपि महान्, महनीयो महात्मनाम् ।
अहो ! मे स्तुवतः स्वामी, स्तुतेर्गोचरमागमत्[4] ॥ ८ ॥

१२

पट्वभ्यासाऽऽदरैः पूर्वं, तथा वैराग्यमाहरः[1] ।
यथेह जन्मन्याजन्म, तत्सात्मीभावमागमत् ॥ १ ॥

दुःखहेतुषु[2] वैराग्यं, न तथा नाथ ! निस्तुषम् ।
मोक्षोपायप्रवीणस्य, यथा ते सुखहेतुषु ॥ २ ॥

विवेकशाणौ[3] वैराग्यशस्त्रं शातं[4] तथा त्वया ।
यथा मोक्षेऽपि तत्साक्षादकुण्ठितपराक्रमम् ॥ ३ ॥

यदा मरुन्नरेन्द्रश्रीस्त्वया नाथोपभुज्यते ।
यत्र तत्र रतिर्नाम, विरक्तत्वं तदापि ते ॥ ४ ॥

नित्यं विरक्तः कामेभ्यो, यदा योगं प्रपद्यसे ।
अलमेभिरिति प्राज्यं, तदा वैराग्यमस्ति ते ॥ ५ ॥

सुखे दुःखे भवे मोक्षे, यदौदासीन्यमीशिषे ।
तदा वैराग्यमेवेति, कुत्र नासि विरागवान् ? ॥ ६ ॥

दुःखगर्भे मोहगर्भे, वैराग्ये निष्ठिताः परे[5] ।
ज्ञानगर्भं तु वैराग्यं, त्वय्येकायनतां गतम् ॥ ७ ॥

औदासीन्येऽपि सततं, विश्वविश्वोपकारिणे ।
नमो वैराग्यनिघ्नाय[6], तायिने परमात्मने ॥ ८ ॥

१३

[1] अनाहूतसहायस्त्वं, त्वमकारणवत्सलः ।
अनभ्यर्थितसाधुस्त्वं, त्वमसम्बन्धबान्धवः ॥ १ ॥

[2] अनक्तस्निग्धमनसममृजोज्ज्वलवाक्पथम् ।
अधौतामलशीलं त्वां, शरण्यं शरणं श्रये ॥ २ ॥

अचण्डवीरव्रतिना[3], शमिना शमवर्त्तिना ।
त्वया काममकुट्यन्त, कुटिलाः कर्मकण्टकाः ॥ ३ ॥

अभवाय महेशायागदाय[4] नरकच्छिदे ।
अराजसाय ब्रह्मणे, कस्मैचिद्भवते नमः ॥ ४ ॥

[5] अनुक्षितफलोदग्रादनिपातगरीयसः ।
असङ्कल्पितकल्पद्रोस्त्वत्तः फलमवाप्नुयाम् ॥ ५ ॥

असङ्गस्य जनेशस्य, निर्ममस्य कृपात्मनः ।
मध्यस्थस्य जगत्त्रातुरनङ्कस्तेऽस्मि किङ्करः ॥ ६ ॥

अगोपिते रत्ननिधाववृते कल्पपादपे ।
अचिन्त्ये चिन्तारत्ने च, त्वय्यात्माऽयं मयार्पितः ॥ ७ ॥

फलानुध्यानवन्ध्योऽहं,[6] फलमात्रतनुर्भवान् ।
प्रसीद यत्कृत्यविधौ, किङ्कर्तव्यजडे मयि ॥ ८ ॥

१४

मनोवचःकायचेष्टाः, कष्टाः संहृत्य सर्वथा ।
श्लथत्वेनैव भवता, मनःशल्यं[1] वियोजितम् ॥ १ ॥

संयतानि न चाक्षाणि, नैवोच्छृङ्खलितानि च ।
इति सम्यक्प्रतिपदा, त्वयेन्द्रियजयः कृतः[2] ॥ २ ॥

योगस्याष्टाङ्गता नूनं, प्रपञ्चः कथमन्यथा ? ।
आबालभावतोऽप्येष,[3] तव सात्म्यमुपेयिवान् ॥ ३ ॥

विषयेषु विरागस्ते, चिरं सहचरेष्वपि ।
योगे सात्म्यमदृष्टेऽपि,[4] स्वामिन्निदमलौकिकम् ॥ ४ ॥

तथा परे न रज्यन्त, उपकारपरे परे[5] ।
यथाऽपकारिणि भवानहो ! सर्वमलौकिकम् ॥ ५ ॥

[6]हिंसका अप्युपकृता, आश्रिता अप्युपेक्षिताः ।
इदं चित्रं चरित्रं ते, के वा पर्यनुयुञ्जताम् ॥ ६ ॥

तथा समाधौ परमे, त्वयाऽऽत्मा विनिवेशितः ।
सुखी दुःख्यस्मि नास्मीति, यथा न प्रतिपन्नवान् ॥ ७ ॥

ध्याता ध्येयं तथा ध्यानं[7], त्रयमेकात्मतां गतम् ।
इति ते योगमाहात्म्यं, कथं श्रद्धीयतां परैः ? ॥ ८ ॥

१५

जगज्जैत्रा गुणास्त्रातरन्ये तावत्तवासताम् ।
उदात्तशान्तया जिग्ये, मुद्रयैव[1] जगत्त्रयी ॥ १ ॥

मेरुस्तृणीकृतो मोहात्पयोधिर्गोष्पदीकृतः ।
गरिष्ठेभ्यो गरिष्ठो यैः, पाप्मभिस्त्वमपोहितः[2] ॥ २ ॥

च्युतश्चिन्तामणिः पाणेस्तेषां लब्धा सुधा मुधा ।
यैस्त्वच्छासनसर्वस्वमज्ञानैर्नात्मसात्कृतम् ॥ ३ ॥

यस्त्वय्यपि दधौ दृष्टिमुल्मुका[3]कारधारिणीम् ।
[4]तमाशुशुक्षणिः साक्षादालप्यालमिदं हि वा ॥ ४ ॥

त्वच्छासनस्य साम्यं ये, मन्यन्ते शासनान्तरैः ।
विषेण तुल्यं पीयूषं, तेषां हन्त ! हतात्मनाम् ॥ ५ ॥

[6]अनेडमूका भूयासुस्ते येषां त्वयिमत्सरः ।
[7]शुभोदर्काय वैकल्यमपि पापेषु कर्मसु ॥ ६ ॥

तेभ्यो नमोऽञ्जलिरयं, तेषां तान्समुपास्महे ।
त्वच्छासनामृतरसैर्यैरात्माऽसिच्यताऽन्वहम् ॥ ७ ॥

भुवे तस्यै नमो यस्यां, तव पादनखांशवः ।
चिरं चूडामणीयन्ते, ब्रूमहे किमतः परम् ? ॥ ८ ॥

जन्मवानस्मि धन्योऽस्मि, कृतकृत्योऽस्मि यन्मुहुः ।
जातोऽस्मि त्वद्गुण[8]ग्रामरामणीयकलम्पटः ॥ ९ ॥

१६

त्वन्मतामृतपानोत्था, इतः शमरसोर्मयः ।
[1]पराणयन्ति मां नाथ !, परमानन्दसम्पदम् ॥ १ ॥

इतश्चानादिसंस्कारमूर्च्छितो मूर्च्छयत्यलम् ।
रागोरगविषावेगो, हताशः करवाणि किम् ? ॥ २ ॥

रागाहिगरलाघ्रातोऽकार्षं यत्कर्मवैशसम् ।
तद्वक्तुमप्यशक्तोऽस्मि, धिग्मे प्रच्छन्नपापताम्[2] ॥ ३ ॥

क्षणं सक्तः क्षणं मुक्तः, क्षणं क्रुद्धः क्षणं क्षमी ।
मोहाद्यैः क्रीडये[3]वाहं, कारितः कपिचापलम् ॥ ४ ॥

प्राप्यापि तव सम्बोधिं, मनोवाक्कायकर्मजैः ।
दुश्चेष्टितैर्मया नाथ ! शिरसि ज्वालितोऽनलः ॥ ५ ॥

त्वय्यपि त्रातरि त्रातर्यन्मोहादिमलिम्लुचैः ।
रत्नत्रयं मे ह्रियते, हताशो हा ! हतोऽस्मि तत् ॥ ६ ॥

भ्रान्तस्तीर्थानि दृष्टस्त्वं, मयैकस्तेषु तारकः ।
तत्तवांह्रौ विलग्नोऽस्मि, नाथ ! तारय तारय ॥ ७ ॥

[13]भवत्प्रसादेनैवाहमियतीं प्रापितो भुवम् ।
औदासीन्येन नेदानीं, तव युक्तमुपेक्षितुम् ॥ ८ ॥

ज्ञाता तात ! त्वमेवैकस्त्वत्तो नान्यः कृपापरः ।
नान्यो मत्तः कृपापात्रमेधि यत्[14]कृत्यकर्मठः ॥ ९ ॥

१७

स्वकृतं दुष्कृतं गर्हन्, सुकृतं चानुमोदयन् ।
नाथ ! त्वच्चरणौ यामि, शरणं शरणोज्झितः ॥ १ ॥

मनोवाक्कायजे पापे, कृतानुमतिकारितैः ।
मिथ्या मे दुष्कृतं भूयादपुनः क्रिययान्वितम् ॥ २ ॥

यत्कृतं सुकृतं किञ्चिद्रत्नत्रितयगोचरम् ।
तत्सर्वमनुमन्येऽहं, मार्गमात्रानुसार्यपि ॥ ३ ॥

सर्वेषामर्हदादीनां, यो योऽर्हत्त्वादिको गुणः ।
अनुमोदयामि तं तं, सर्वं तेषां महात्मनाम् ॥ ४ ॥

त्वां[1] त्वत्फलभूतान् सिद्धाँस्त्वच्छासनरतान्मुनीन् ।
त्वच्छासनं च शरणं, प्रतिपन्नोऽस्मि भावतः ॥ ५ ॥

क्षमयामि सर्वान्सत्त्वान्सर्वे क्षाम्यन्तु ते मयि ।
मैत्र्यस्तु तेषु सर्वेषु, त्वदेकशरणस्य मे ॥ ६ ॥

एकोऽहं नास्ति मे कश्चिन्न चाहमपि कस्यचित् ।
त्वदंह्रिशरणस्थस्य, मम दैन्यं न किञ्चन ॥ ७ ॥

यावन्नाप्नोमि पदवीं, परां त्वदनुभावजाम् ।
तावन्मयि शरण्यत्वं, मा मुचः[2] शरणं श्रिते ॥ ८ ॥

१८

न परं नाम मृद्वेव, कठोरमपि किञ्चन ।
विशेषज्ञाय विज्ञप्यं, स्वामिने स्वान्तशुद्धये ॥ १ ॥

न पक्षिपशुसिंहादिवाहनासीनविग्रहः ।
न नेत्रवक्त्रगात्रादिविकारविकृताकृतिः[1] ॥ २ ॥

न शूलचापचक्रादिशस्त्राङ्ककरपल्लवः ।
नाङ्गनाकमनीयाङ्गपरिष्वङ्गपरायणः ॥ ३ ॥

न गर्हणीयचरितप्रकम्पितमहाजनः ।
न प्रकोपप्रसादादिविडम्बितनरामरः ॥ ४ ॥

न जगज्जननस्थेम[2]विनाशविहिताऽऽदरः ।
न लास्यहास्यगीतादिविप्लवोपप्लुतस्थितिः ॥ ५ ॥

तदेवं सर्वदेवेभ्यः[3], सर्वथा त्वं विलक्षणः ।
देवत्वेन प्रतिष्ठाप्यः, कथं नाम परीक्षकैः ? ॥ ६ ॥

[4]अनुश्रोतः सरत्पर्णतृणकाष्ठादि युक्तिमत् ।
प्रतिश्रोतः श्रयद्वस्तु, कया युक्त्या प्रतीयताम् ? ॥ ७ ॥

अथवाऽलं मन्दबुद्धिपरीक्षकपरीक्षणैः ।
ममापि कृतमेतेन, वैयात्येन[5] जगत्प्रभो ! ॥ ८ ॥

यदेव सर्वसंसारिजन्तुरूप[6]विलक्षणम् ।
परीक्षन्तां कृतधियस्तदेव तव लक्षणम् ॥ ९ ॥

क्रोधलोभभयाक्रान्तं, जगदस्माद्विलक्षणः ।
न गोचरो मृदुधियां, वीतरागः [7]कथञ्चन ॥ १० ॥

१९

[1]तव चेतसि वर्त्तेऽहमिति वार्त्ताऽपि दुर्लभा ।
मच्चित्ते वर्त्तसे चेत्त्वमलमन्येन केनचित् ॥ १ ॥

निगृह्य कोपतः काँश्चित्, काँश्चित्तुष्ट्यानुगृह्य च ।
प्रतार्यन्ते मृदुधियः, प्रलम्भनपरैः परैः ॥ २ ॥

अप्रसन्नात्कथं प्राप्यं, फलमेतदसङ्गतम् ।
चिन्तामण्यादयः किं न, फलन्त्यपि विचेतनाः? ॥ ३ ॥

वीतराग ! सपर्या[3]यास्तवाज्ञापालनं परम् ।
आज्ञाऽऽराद्धा विराद्धा च, शिवाय च भवाय च ॥ ४ ॥

आकालमियमाज्ञा ते, हेयोपादेयगोचरा ।
आश्रवः सर्वथा हेय, उपादेयश्च संवरः ॥ ५ ॥

आश्रवो भवहेतुः स्यात्संवरो मोक्षकारणम् ।
इतीयमार्हती मुष्टिरन्यदस्याः[4] प्रपञ्चनम् ॥ ६ ॥

इत्याज्ञाराधनपरा, अनन्ताः परिनिर्वृताः ।
निर्वान्ति चान्ये क्वचन, निर्वास्यन्ति तथाऽपरे ॥ ७ ॥

हित्वा प्रसादनादैन्यमेकयैव[5] त्वदाज्ञया ।
सर्वथैव विमुच्यन्ते, जन्मिनः कर्मपञ्जरात् ॥ ८ ॥

२०

पादपीठलुठन्मूर्ध्नि, मयि पादरजस्तव ।
चिरं निवसतां पुण्यपरमाणुकणोपमम्[6] ॥ १ ॥

मद्दृशौ त्वन्मुखासक्ते, हर्षबाष्पजलोर्मिभिः ।
अप्रेक्ष्यप्रेक्षणोद्भूतं, क्षणात्क्षालयतां मलम् ॥ २ ॥

त्वत्पुरो लुठनैर्भूयान्मद्भालस्य तपस्विनः ।
कृताऽसेव्यप्रणामस्य, प्रायश्चित्तं किणावलिः[7] ॥ ३ ॥

मम त्वद्दर्शनोद्भूताश्चिरं रोमाञ्चकण्टकाः ।
तुदन्तां[8] चिरकालोत्थामसद्दर्शनवासनाम् ॥ ४ ॥

त्वद्वक्त्रकान्तिज्योत्स्नासु, निपीतासु सुधास्विव ।
मदीयैर्लोचनाम्भोजैः, प्राप्यतां निर्निमेषता[9] ॥ ५ ॥

त्वदास्यलासिनी नेत्रे, त्वदुपास्तिकरौ करौ ।
त्वद्गुणश्रोतृणी श्रोत्रे, भूयास्तां सर्वदा मम ॥ ६ ॥

कुण्ठाऽपि यदि सोत्कण्ठा, त्वद्गुणग्रहणं प्रति ।
ममैषा भारती तर्हि, स्वस्त्येतस्यै[10] किमन्यया ? ॥ ७ ॥

तव प्रेष्योऽस्मि दासोऽस्मि, सेवकोऽस्म्यस्मि किङ्करः ।
ओमिति प्रतिपद्यस्व, नाथ ! नातः परं ब्रुवे ॥ ८ ॥

श्रीहेमचन्द्र[11]प्रभवाद्वीतरागस्तवादितः ।
कुमारपालभूपालः, प्राप्नोतु फलमीप्सितम् ॥ ९ ॥

अथ श्रीमहादेवस्तोत्रम् ।

प्रशान्तं दर्शनं यस्य, सर्वभूताभयप्रदम् ।
माङ्गल्यं च प्रशस्तं च, शिवस्तेन विभाव्यते ॥ १ ॥

महत्त्वादीश्वरत्वाच्च, यो महेश्वरतां गतः ।
राग-द्वेषविनिर्मुक्तं, वन्देऽहं तं महेश्वरम् ॥ २ ॥

महाज्ञानं भवेद्यस्य, लोकालोकप्रकाशकम् ।
महादया दमो ध्यानं, महादेवः स उच्यते ॥ ३ ॥

महान्तस्तस्करा ये तु, तिष्ठन्तः स्वशरीरके ।
निर्जिता येन देवेन, महादेवः स उच्यते ॥ ४ ॥

रागद्वेषौ महामल्लौ, दुर्जयौ येन निर्जितौ ।
महादेवं तु तं मन्ये, शेषा वै नामधारकाः ॥ ५ ॥

शब्दमात्रो महादेवो, लौकिकानां मते मतः ।
शब्दतो गुणतश्चैवाऽर्थतोऽपि जिनशासने ॥ ६ ॥

शक्तितो व्यक्तितश्चैव, विज्ञानं लक्षणं तथा ।
मोहजालं हतं येन, महादेवः स उच्यते ॥ ७ ॥

नमोऽस्तु ते महादेव !, महामदविवर्जित ! ।
महालोभविनिर्मुक्त !, महागुणसमन्वित ! ॥ ८ ॥

महारागो महाद्वेषो, महामोहस्तथैव च ।
कषायश्च हतो येन, महादेवः स उच्यते ॥ ९ ॥

महाकामो हतो येन, महाभयविवार्जितः ।
महाव्रतोपदेशी च, महादेवः स उच्यते ॥ १० ॥

महाक्रोधो महामानो, महामाया महामदः ।
महालोभो हतो येन, महादेवः स उच्यते ॥ ११ ॥

महानन्दो दया यस्य, महाज्ञानी महातपाः ।
महायोगी महामौनी, महादेवः स उच्यते ॥ १२ ॥

महावीर्यं महाधैर्यं, महाशीलं महागुणः ।
महामञ्जुक्षमा यस्य, महादेवः स उच्यते ॥ १३ ॥

स्वयम्भूतं यतो ज्ञानं, लोकालोकप्रकाशकम् ।
अनन्तवीर्यचारित्रं, स्वयम्भूः सोऽभिधीयते ॥ १४ ॥

शिवो यस्माज्जिनः प्रोक्तः, शङ्करश्च प्रकीर्तितः ।
कायोत्सर्गी च पर्यङ्की, स्त्रीशस्त्रादिविवर्जितः ॥ १५ ॥

साकारोऽपि ह्यनाकारो, मूर्त्तामूर्त्तस्तथैव च ।
परमात्मा च बाह्यात्मा, अन्तरात्मा तथैव च ॥ १६ ॥

दर्शन–ज्ञानयोगेन, परमात्माऽयमव्ययः ।
परा क्षान्तिरहिंसा च, परमात्मा स उच्यते ॥ १७ ॥

परमात्मा सिद्धिसम्प्राप्तौ, बाह्यात्मा तु भवान्तरे ।
अन्तरात्मा भवेद्देह इत्येषस्त्रिविधः शिवः ॥ १८ ॥

सकलो दोषसम्पूर्णो, निष्कलो दोषवर्जितः ।
पञ्चदेहविनिर्मुक्तः, सम्प्राप्तः परमं पदम् ॥ १९ ॥

एकमूर्त्तिस्त्रयो भागा, ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ।
तान्येव पुनरुक्तानि, ज्ञान-चारित्र-दर्शनात् ॥ २० ॥

एकमूर्त्तिस्त्रयो भागा, ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ।
परस्परं विभिन्नानामेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ? ॥ २१ ॥

कार्यं विष्णु, क्रिया ब्रह्मा, कारणं तु महेश्वरः ।
कार्य-कारणसम्पन्ना, एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ? ॥ २२ ॥

प्रजापतिसुतो ब्रह्मा, माता पद्मावती स्मृता ।
अभिजिज्जन्मनक्षत्रमेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ? ॥ २३ ॥

वसुदेवसुतो विष्णुर्माता च देवकी स्मृता ।
रोहिणी जन्मनक्षत्रमेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ? ॥ २४ ॥

पेढालस्य सुतो रुद्रो, माता च सत्यकी स्मृता ।
मूलं च जन्मनक्षत्रमेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ? ॥ २५ ॥

रक्तवर्णो भवेद् ब्रह्मा, श्वेतवर्णो महेश्वरः ।
कृष्णवर्णो भवेद् विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ? ॥ २६ ॥

अक्षसूत्री भवेद् ब्रह्मा, द्वितीयः शूलधारकः ।
तृतीयः शङ्खचक्राङ्क एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ? ॥ २७ ॥

चतुर्मुखो भवेद् ब्रह्मा, त्रिनेत्रोऽथ महेश्वरः ।
चतुर्भुजो भवेद् विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ? ॥ २८ ॥

मथुरायां जातो ब्रह्मा, राजगृहे महेश्वरः ।
द्वारामत्यामभूद् विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ? ॥ २९ ॥

हंसयानो भवेद् ब्रह्मा, वृषयानो महेश्वरः ।
गरुडयानो भवेद् विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ? ॥ ३० ॥

पद्महस्तो भवेद् ब्रह्मा, शूलपाणिर्महेश्वरः ।
चक्रपाणिर्भवेद् विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ? ॥ ३१ ॥

कृते जातो भवेद् ब्रह्मा, त्रेतायां च महेश्वरः ।
द्वापरे जनितो विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ? ॥ ३२ ॥

ज्ञानं विष्णुः सदा प्रोक्तं, चारित्रं ब्रह्म उच्यते ।
सम्यक्त्वं तु शिवं प्रोक्तमर्हन्मूर्त्तिस्त्रयात्मिका ॥ ३३ ॥

क्षिति-जल-पवन-हुताशन-यजमाना-ऽऽकाश-सोम-सूर्याख्याः ।
इत्येतेऽष्टौ भगवति, वीतरागे गुणा मताः ॥ ३४ ॥

क्षितिरित्युच्यते क्षान्तिर्जलं या च प्रसन्नता ।
निःसङ्गता भवेद्वायुर्हुताशो योगो उच्यते ॥ ३५ ॥

यजमानो भवेदात्मा, तपोदानदयादिभिः ।
अलेपकत्वादाकाशसङ्काशः सोऽभिधीयते ॥ ३६ ॥

सौम्यमूर्त्तिरुचिश्चन्द्रो, वीतरागः समीक्ष्यते ।
ज्ञानप्रकाशकत्वेन, आदित्यः सोऽभिधीयते ॥ ३७ ॥

पुण्यपापविनिर्मुक्तो, रागद्वेषविवर्जितः ।
श्रीअर्हद्भ्यो नमस्कारः, कर्तव्यः शिवमिच्छता ॥ ३८ ॥

अकारेण भवेद् विष्णू रेफे ब्रह्मा व्यवस्थितः ।
हकारेण हरः प्रोक्तस्तस्यान्ते परमं पदम् ॥ ३९ ॥

अकार आदिधर्मस्य, आदिमोक्षप्रदेशकः ।
स्वरूपे परमं ज्ञानमकारस्तेन उच्यते ॥ ४० ॥

रूपिद्रव्यस्वरूपं वा, दृष्ट्वा ज्ञानेन चक्षुषा ।
दृष्टं लोकमलोकं वा, रकारस्तेन उच्यते ॥ ४१ ॥

हता रागाश्च द्वेषाश्च, हता मोहपरीषहाः ।
हतानि येन कर्माणि, हकारस्तेन उच्यते ॥ ४२ ॥

सन्तोषेणाभिसम्पूर्णः, प्रातिहार्याष्टकेन च ।
ज्ञात्वा पुण्यं च पापं च, नकारस्तेन उच्यते ॥ ४३ ॥

भवबीजाङ्कुरजनना, रागाद्याः, क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥ ४४ ॥

अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका ।

अनन्तविज्ञानमतीतदोषमबाध्यसिद्धान्तममर्त्यपूज्यम् ।
श्रीवर्द्धमानं जिनमाप्तमुख्यं, स्वयम्भुवं स्तोतुमहं यतिष्ये ॥ १ ॥

अयं जनो नाथ ! तव स्तवाय, गुणान्तरेभ्यः स्पृहयालुरेव ।
विगाहतां किन्तु यथार्थवादमेकं परीक्षाविधिदुर्विदग्धः ॥ २ ॥

गुणेष्वसूयां दधतः परेऽमी, मा शिश्रियन्नाम भवन्तमीशम् ।
तथापि सम्मील्य विलोचनानि, विचारयन्तां नयवर्त्म सत्यम् ॥३॥

स्वतोऽनुवृत्तिव्यतिवृत्तिभाजो, भावा न भावान्तरनेयरूपाः[3] ।
परात्मतत्त्वादतथात्मतत्त्वाद्, द्वयं वदन्तोऽकुशलाः स्खलन्ति ॥४॥

आदीपमाव्योम समस्वभावं, स्याद्वादमुद्राऽनतिभेदि वस्तु ।
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदिति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापाः[4] ॥ ५ ॥

कर्त्ताऽस्ति कश्चिज्जगतः स चैकः, स सर्वगः स स्ववशः स नित्यः ।
इमाः कुहेवाकविडम्बनाः स्युस्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥ ६ ॥

न धर्मधर्मित्वमतीवभेदे, वृत्त्याऽस्ति चेन्न[5] त्रितयं चकास्ति ।
इहेदमित्यस्ति मतिश्च वृत्तौ, न गौणभेदोऽपि च लोकबाधः ॥ ७ ॥

सतामपि स्यात् क्वचिदेव सत्ता, चैतन्यमौपाधिकमात्मनोऽन्यत् ।
न संविदानन्दमयी च मुक्तिः, सुसूत्रमासूत्रितमत्वदीयैः[6] ॥ ८ ॥

यत्रैव यो दृष्टगुणः स तत्र, कुम्भादिवन्निष्प्रतिपक्षमेतत् ।
तथापि देहाद् बहिरात्मतत्त्वमतत्त्ववादोपहताः[7] पठन्ति ॥ ९ ॥

स्वयं विवादग्रहिले वितण्डापाण्डित्यकण्डूलमुखे जनेऽस्मिन् ।
मायोपदेशात् परमर्म भिन्दन्नहो ! विरक्तो मुनिरन्यदीयः[8] ॥१०॥

न धर्महेतुर्विहिताऽपि हिंसा, नोत्सृष्टमन्यार्थमपोद्यते च ।
स्वपुत्रघातान्नृपतित्वलिप्सासब्रह्मचारि स्फुरितं[9] परेषाम् ॥ ११ ॥

स्वार्थावबोधक्षम एव बोधः, प्रकाशते नार्थकथाऽन्यथा तु ।
परे[10] परेभ्यो भयतस्तथापि, प्रपेदिरे ज्ञानमनात्मनिष्ठम् ॥ १२ ॥

माया सती चेद् द्वयतत्त्वसिद्धिरथासतीहन्त ! कुतः प्रपञ्चः ! ।
मायैव चेदर्थसहा च तत्किं, माता च बन्ध्या च भवत्परेषाम्?[11] १३

अनेकमेकात्मकमेव वाच्यं, द्वयात्मकं वाचकमप्यवश्यम् ।
अतोऽन्यथावाचकवाच्यक्लृप्तावतावकानां[12] प्रतिभाप्रमादः ॥ १४ ॥

चिदर्थशून्या च जडा च बुद्धिः, शब्दादितन्मात्रजमम्बरादि ।
न बन्धमोक्षौ पुरुषस्य चेति, कियज्जडैर्न[13] ग्रथितं विरोधि ॥ १५ ॥

न तुल्यकालः फलहेतुभावो, हेतौ विलीने न फलस्य भावः ।
न संविदद्वैतपथेऽर्थसंविद्, विलूनशीर्णं[14] सुगतेन्द्रजालम् ॥ १६ ॥

विना प्रमाणं परवन्न शून्यः, स्वपक्षसिद्धेः पदमश्नुवीत ।
कुप्येत् कृतान्तः स्पृशते प्रमाणमहो ! सुदृष्टं त्वदसूयिदृष्टम् ॥१७॥

कृतप्रणाशाऽकृतकर्मभोगभवप्रमोक्षस्मृतिभङ्गदोषान् ।
उपेक्ष्य साक्षात् क्षणभङ्गमिच्छन्नहो ! महासाहसिकः[15] परस्ते ॥१८॥

सा वासना सा क्षणसन्ततिश्च, नाभेदभेदाऽनुभयैर्घटेते ।
तटस्तटाऽदर्शिशकुन्तपोतन्यायात्[16] त्वदुक्तानि परे श्रयन्तु ॥ १९ ॥

विनाऽनुमानेन पराभिसन्धिमसंविदानस्य तु नास्तिकस्थ ।
न साम्प्रंत वक्तुमपि क्व चेष्टा, क्व दृष्टमात्रं च हहा ! प्रमादः ॥२०॥

प्रतिक्षणोत्पादविनाशयोगिस्थिरैकमध्यक्षमपीक्षमाणः ।
जिन ! त्वदाज्ञामवमन्यते यः, स वातकी नाथ ! पिशाचकी वा ॥२१॥

[17]
अनन्तधर्मात्मकमेव तत्त्वमतोऽन्यथा सत्त्वमसूपपादम् ।
इति प्रमाणान्यपि ते कुवादिकुरङ्गसन्त्रासनसिंहनादाः ॥ २२ ॥

अपर्ययं वस्तु समस्यमानमद्रव्यमेतच्च विविच्यमानम् ।
[18]
आदेशभेदोदितसप्तभङ्गमदीदृशस्त्वं बुधरूपवेद्यम् ॥ २३ ॥

उपाधिभेदोपहितं विरुद्धं, नार्थेष्वसत्त्वं सदवाच्यते च ।
[19]
इत्यप्रबुध्यैव विरोधभीता, जडास्तदेकान्तहताः पतन्ति ॥ २४ ॥

स्यान्नाशि नित्यं सदृशं विरूपं, वाच्यं न वाच्यं सदसत्तदेव ।
[20]
विपश्चितां नाथ ! निपीततत्त्वसुधोद्गतोद्गारपरम्परेयम् ॥ २५ ॥

य एव दोषाः किल नित्यवादे, विनाशवादेऽपि समास्त एव ।
परस्परध्वंसिषु कण्टकेषु, जयत्यधृष्यं जिन ! शासनं ते ॥ २६ ॥

नैकान्तवादे सुखदुःखभोगौ, न पुण्यपापे न च बन्धमोक्षौ ।
[21]
दुर्नीतिवादव्यसनासिनैवं, परैर्विलुप्तं जगदप्यशेषम् ॥ २७ ॥

सदेव सत् स्यात्सदिति त्रिधाऽर्थो, मीयेत दुर्नीतिनय-प्रमाणैः ।
यथार्थदर्शी तु नयप्रमाणपथेन दुर्नीतिपथं त्वमाऽऽस्थः[22] ॥ २८ ॥

मुक्तोऽपि वाऽभ्येतु भवं भवो वा, भवस्थशून्योऽस्तु मितात्मवादे ।
षड्जीवकायं त्वमनन्तसङ्ख्यमाख्यस्तथा नाथ ! यथा न दोषः[23] ॥२९॥

अन्योऽन्यपक्षप्रतिपक्षभावाद्, यथा परे मत्सरिणः प्रवादाः ।
नयानशेषानविशेषमिच्छन्, न पक्षपाती समयस्तथा ते[24] ॥ ३० ॥

वाग्वैभवं ते निखिलं विवेक्तुमाशास्महे चेन्महनीयमुख्य ! ।
लङ्घेम जङ्घालतया समुद्रं, वहेम[25] चन्द्रद्युतिपानतृष्णाम् ॥ ३१ ॥

इदं तत्त्वाऽतत्त्वव्यतिकरकरालेऽन्धतमसे,
जगन्मायाकारैरिव हतपरैर्हा ! विनिहितम् ।
तदुद्धर्तुं शक्तो नियतमविसंवादिवचन–
स्त्वमेवातस्त्रातस्त्वयि कृतसपर्याः कृतधियः ॥ ३२ ॥

अयोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका ।

अगम्यमध्यात्मविदामवाच्यं, वचस्विनामक्षवतां परोक्षम् ।
श्रीवर्द्धमानाभिधमात्मरूपमहं[1] स्तुतेर्गोचरमानयामि ॥ १ ॥

स्तुतावशक्तिस्तव योगिनां न किं, गुणानुरागस्तु ममापि निश्चलः ।
इदं विनिश्चित्य तव स्तवं वदन्, न बालिशोऽप्येष जनोऽपराध्यति।२।

क्व सिद्धसेनस्तुतयो महार्था ?, अशिक्षिताऽऽलापकला क्व चैषा ? ।
तथापि यूथाधिपतेः पथिस्थः, स्खलद्गतिस्तस्य शिशुर्न[2] शोच्यः ॥३॥

जिनेन्द्र ! यानेव विबाधसे स्म, दुरन्तदोषान् विविधैरुपायैः ।
त एव चित्रं त्वदसूययेव, कृताः कृतार्थाः परतीर्थनाथैः ॥ ४ ॥

यथास्थितं वस्तु दिशन्नधीश !, न तादृशं कौशलमाश्रितोऽसि ।
तुरङ्गशृङ्गाण्युपपादयद्भ्यो[3], नमः परेभ्यो नवपण्डितेभ्यः ॥ ५ ॥

जगत्यनुध्यानबलेन शश्वत्, कृतार्थयत्सु प्रसभं भवत्सु ।
किमाश्रितोऽन्यैः शरणं त्वदन्यः, स्वमांसदानेन वृथा कृपालुः ॥६॥

स्वयं कुमार्गं[4] लपिता नु नाम, प्रलम्भमन्यानपि लम्भयन्ति ।
सुमार्गगं तद्विदमादिशन्तमसूययाऽन्धा अवमन्वते च ॥ ७ ॥

प्रादेशिकेभ्यः[5] परशासनेभ्यः, पराजयो यत्तव शासनस्य ।
खद्योतपोतद्युतिडम्बरेभ्यो, विडम्बनेयं हरिमण्डलस्य ॥ ८ ॥

शरण्य ! पुण्ये तव शासनेऽपि, संदेग्धि यो विप्रतिपद्यते वा ।
स्वादौ स तथ्ये स्वहिते च पथ्ये[6], संदेग्धि वा विप्रतिपद्यते वा ॥९॥

हिंसाद्यसत्कर्मपथोपदेशादसर्वविन्मूलतया प्रवृत्तेः ।
नृशंसदुर्बुद्धिपरिग्रहाच्च, ब्रूमस्त्वदन्यागममप्रमाणम् ॥ १० ॥

हितोपदेशात् सकलज्ञकॢप्तेर्मुमुक्षुसत्साधुपरिग्रहाच्च ।
पूर्वापरार्थेष्वविरोधसिद्धेस्त्वदागमा[7] एव सतां प्रमाणम् ॥ ११ ॥

क्षिप्येत वाऽन्यैः सदृशीक्रियेत वा, तवाङ्घ्रिपीठे लुठनं सुरेशितुः ।
इदं यथावस्थितवस्तुदेशनं, परैः[8] कथङ्कारमपाकरिष्यते ? ॥ १२ ॥

तद्दुःषमाकालखलायितं वा, पचेलिमं कर्म भवानुकूलम् ।
उपेक्षते यत्तव शासनार्थमयं[9] जनो विप्रतिपद्यते वा ॥ १३ ॥

परःसहस्राः शरदस्तपांसि, युगान्तरं योगमुपासतां वा ।
तथापि ते मार्गमनापतन्तो,न मोक्ष्यमाणा[10] अपि यान्ति मोक्षम्॥१४॥

अनाप्तजाड्यादिविनिर्मितित्व–सम्भावनासम्भविविप्रलम्भाः ।
परोपदेशाः परमाप्तकॢप्त–पथोपदेशे किमु संरभन्ते[11] ? ॥ १५ ॥

यदार्जवादुक्तमयुक्तमन्यैस्तदन्यथाकारमकारि शिष्यैः ।
न विप्लवोऽयं तव शासनेऽभूदहो ! अधृष्या तव शासनश्रीः ॥१६॥

देहाद्ययोगेन सदाशिवत्वं, शरीरयोगादुपदेशकर्म ।
परस्परस्पर्धि कथं घटेत, परोपकॢप्तेष्वधिदैवतेषु[12] ॥ १७ ॥

प्रागेव देवान्तरसंश्रितानि, रागादिरूपाण्यवमान्तराणि ।
न मोहजन्यां करुणामपीश !, समाधिमाध्यस्थ्ययुगाश्रितोऽसि[13]॥१८॥

जगन्ति भिन्दन्तु सृजन्तु वा पुनर्यथा तथा वा पतयः प्रवादिनाम् ।
त्वदेकनिष्ठे भगवन् ! भवक्षयक्षमोपदेशे तु परं तपस्विनः ॥१९॥

वपुश्च पर्यङ्कशयं श्लथं च, दृशौ च नासानियते स्थिरे च ।
न शिक्षितेयं परतीर्थनाथै र्जिनेन्द्र ! मुद्राऽपि तवान्यदास्ताम् ॥२०॥

यदीयसम्क्त्वबलात् प्रतीमो, भवादृशानां परमस्वभावम् ।
कुवासनापाशविनाशनाय, नमोऽस्तु तस्मै तव शासनाय ॥ २१ ॥

अपक्षपातेन परीक्षमाणा, द्वयं[14] द्वयस्याप्रतिमं प्रतीमः ।
यथास्थितार्थप्रथनं तवैतदस्थाननिर्बन्धरसं परेषाम् ॥ २२ ॥

अनाद्यविद्योपनिषन्निषण्णैर्विशृङ्खलैश्चापलमाचरद्भिः ।
अमूढलक्ष्योऽपि पराक्रिये यत्[15], त्वत्किङ्करः किं करवाणि देव! ॥२३॥

विमुक्तवैरव्यसनानुबन्धाः, श्रयन्ति यां शाश्वतवैरिणोऽपि ।
परैरगम्यां तव योगिनाथ !, तां देशनाभूमिमुपाश्रयेऽहम् ॥ २४ ॥

मदेन[16] मानेन मनोभवेन, क्रोधेन लोभेन च सम्मदेन ।
पराजितानां प्रसभं सुराणां, वृथैव साम्राज्यरुजा परेषाम् ॥२५॥

स्वकण्ठपीठे कठिनं कुठारं, परे किरन्तः प्रलपन्तु किञ्चित् ।
मनीषिणां तु त्वयि वीतराग !, न रागमात्रेण मनोऽनुरक्तम्[17] ॥२६॥

सुनिश्चितं मत्सरिणो[18] जनस्य, न नाथ ! मुद्रामतिशेरते ते ।
माध्यस्थ्यमास्थाय परीक्षका ये, मणौ च काचे च समानुबन्धाः ॥२७॥

इमां समक्षं प्रतिपक्षसाक्षिणामुदारघोषामवघोषणां[19] ब्रुवे ।
'न वीतरागात् परमस्ति दैवतं,न चाप्यनेकान्तमृते नयस्थितिः'॥

न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो, न द्वेषमात्रादरुचिः परेषु[20] ।
यथावदाप्तत्वपरीक्षया तु, त्वामेव वीर ! प्रभुमाश्रिताः स्मः ॥२९॥

तमःस्पृशामप्रतिभासभाजं, भवन्तमप्याशु विविन्दते याः ।
महेम[21] चन्द्रांशुदृशावदातास्तास्तर्कपुण्या जगदीश ! वाचः ॥ ३० ॥

यत्र तत्र समये यथा तथा, योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया ।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवानेक एव भगवन्[22] ! नमोऽस्तु ते ॥ ३१ ॥

इदं श्रद्धामात्रं तदथ परनिन्दां मृदुधियो,
विगाहन्तां हन्त ! प्रकृतिपरवादव्यसनिनः ।
अरक्तद्विष्टानां जिनवर ! परीक्षाक्षमधिया-
मयं तत्त्वालोकः[23] स्तुतिमयमुपाधिं विधृतवान्॥ ३२ ॥

॥ ॐ नमो नाणस्स ॥

तृतीयः अध्यायः (३)

[श्री विविधग्रन्थस्थं पठनीय–स्तवादि]

(१)

श्री नवपद–स्वरूपदर्शनम्*

अरिहंसिद्धायरिया, उज्झाया साहुणो अ सम्मत्तं ।
नाणं चरणं च तवो, इय पयनवगं मुणेयव्वं ॥ १ ॥

तत्थऽरिहंतेऽट्ठारसदोसविमुक्के विसुद्धनाणमए ।
पयडियतत्ते नयसुरराए झाएह निच्चंपि ॥ २ ॥

पनरसभेयपसिद्धे, सिद्धे घणकम्म बंधणविमुक्के ।
सिद्धाणंतचउक्के, झायह तम्मय[1]मणा सययं ॥ ३ ॥

पंचायारपवित्ते, विसुद्धसिद्धंतदेसणुज्जुत्ते ।
[2]परउवयारिक्कपरे, निच्चं झाएह सूरिवरे ॥ ४ ॥

* दर्शयितारः श्रीगौतमगणधारिणः ।

गणतित्तीसु निउत्ते, सुत्तत्थज्झावणंमि उज्जुत्ते ।
सज्झाए लीणमणे, सम्मं झाएह उज्झाए[3] ॥ ५ ॥

सव्वासु कम्मभूमिसुं, विहरंते गुणगणेहिं संजुत्ते ।
गुत्ते मुत्ते झायह, मुणिराए निट्ठियकसाए ॥ ६ ॥

सव्वन्नुपणीयागमपयडियतत्तत्थसद्दहणरूवं ।
दंसणरयणपईवं, निच्चं धारेह मणभवणे ॥ ७ ॥

जीवाजीवाइपयत्थसत्थतत्तावबोहरूवं च ।
नाणं सव्वगुणाणं, मूलं सिक्खेह विणएणं ॥ ८ ॥

असुहकिरियाण चाओ, सुहासु किरियासु जो य अपमाओ ।
तं चारित्तं उत्तम गुणजुत्तं पालह निरुत्तं[4] ॥ ९ ॥

घणकम्मतमोभरहरणभाणुभूयं दुवालसंगधरं ।
नवरमकसायतावं, चरेह सम्मं तवोकम्मं ॥ १० ॥

एयाइं नवपयाइं, जिणवरधम्मंमि सारभूयाइं ।
कल्लाणकारणाइं, विहिणा आराहियव्वाइं ॥ ११ ॥

---

(२)

श्री *ऋषभजिनेश्वर-स्तवः

[5] भत्तिभरनमिरसुरिंदविंदवंदिअपय ! पढमजिणंदचंद ! ।
[6] चंदुज्जलकेवलकित्तिपूरपूरियभुवणंतरवेरिसूर ! ॥ १ ॥
सूरुव्व हरिअतमतिमिर ! देव ! देवासुरखेयरविहिअसेव ! ।
[7] सेवागयगयमयरायपायपयडियपणामह ! कयपसाय ! ॥ २ ॥

[8] सायरसमसमयामयनिवास ! वासवगुरुगोयरगुणविकास ! ।
[9] कासुज्जलसंजमसीललील ! लीलाइ विहिअमोहावहील ! ॥ ३ ॥
हिलापरजंतुसु अकयसाव ! सावयजणजणिअआणंदभाव ! ।
[10] भावलयअलंकिय ! रिसहनाह ! नाहत्तणु करि हरि दुक्खदाह ॥ ४ ॥

इअ रिसहजिणेसर भुवणदिणेसर, तिजयविजय ! सिरिपालपहो ! ।
मयणाहिअ ! सामिअ ! सिवगइगामिअ ! मणह मणोरह पूरिमहो ॥५॥

---

* श्री मदनासुन्दरीसन्दब्धः ।

(३)

श्री* ऋषभजिनेश्वर-स्तवः

सिरिसिद्धचक्कनवपयमहल्लपढमिल्लपयमय[11] ! जिणिंद ! ।
असुरिंदसुरिंदच्चियपयपंकज ! नाह ! तुज्झ नमो ॥ १ ॥

सिरिरिसहेसरसामिय ! कामियफलदाणकप्पतरुकप्प ! ।
कंदप्पदप्पगंजण ! भवभंजण ! देव ! तुज्झ नमो ॥ २ ॥

सिरिनाभिकुलगरकुलकमलुल्लासपरमहंससम ! ।
असमतमतमतमो[12]भरहरणिक्कपईव ! तुज्झ नमो ॥ ३ ॥

सिरिमरुदेवासामिणिउदरदरीदरिअ[13]केसरिकिसोर ! ।
घोरभुय[14]दंडखंडियपयंडमोहस्स तुज्झ नमो ॥ ४ ॥

इक्खागुवंसभूसण !, गयदूसण ! दूरियमयगल[15]मइंद ।
चंदसमवयण ! वियसियनीलुप्पलनयण ! तुज्झ नमो ॥ ५ ॥

कल्लाणकारणुत्तमत्तत्तकणयकलससरिस[16]संठाण ! ।
कंठट्ठियकलकुंतलनीलुप्पलकलिय ! तुज्झ नमो ॥ ६ ॥

---

* श्री श्रीपालकुमारसंस्तुतः ।

आईसर ! जोईसरलयगयमणलक्खलक्खियसरूव ! ।
भवकूवपडिअजंतुत्तारण ! जिणनाह ! तुज्झ नमो ॥ ७ ॥

सिरिसिद्धसेलमंडण ! दुहखंडण ! खयररायनयपाय ! ।
सयलमहसिद्धिदायग ! जिणनायग ! होउ तुज्झ नमो ॥ ८ ॥

तुज्झ नमो तुज्झ नमो तुज्झ नमो देव ! तुज्झ चेव नमो ।
पणयसुररयणसेहररुइरंजियपाय ! तुज्झ नमो ॥ ९ ॥

---

(४)

श्री *नवपद-स्वरूपदर्शनम्

जिअंतरंगारिजणे सुनाणे, सुपाडिहेराइसयप्पहाणे ।
संदेहसंदोहरयं हरंते, झाएह निच्चंपि जिणेऽरिहंते ॥ १ ॥

दुट्ठट्ठकम्मावरणप्पमुक्के, अणंतनाणाइसिरीचउक्के ।
समग्गलोगग्गपयप्पसिद्धे, झाएह निच्चंपि मणंमि सिद्धे ॥ २ ॥

न तं सुहं देइ पिया न माया, जं दिंति जीवाणिह सूरिपाया ।
तम्हा हु ते चेव सया महेह, जं मुक्खसुक्खाइं लहुं लहेह ॥ ३ ॥

सुत्तत्थसंवेगमयस्सुएणं, सन्नीरखीरामयविस्सुएणं ।
पीणंति जे ते उवझायराए, झाएह निच्चंपि कयप्पसाए ॥ ४ ॥

---

* दर्शयिता श्रीचारणश्रमणमुनिः ।

खंते अ दंते अ सुगुत्तिगुत्ते, मुत्ते पसंते गुणजोगजुत्ते ।
गयप्पमाए हयमोहमाए, झाएह निच्चं मुणिरायपाए ॥ ५ ॥

जं दव्वछक्काइसुसद्दहाणं, तं दंसणं सव्वगुणप्पहाणं ।
कुग्गाहवाही उ वयंति जेण, जहा विसुद्धेण रसायणेण ॥ ६ ॥

नाणं पहाणं नयचक्कसिद्धं, तत्तावबोहिक्कमयं पसिद्धं ।
धरेह चित्तावसहे[17] फुरंतं, माणिक्कदीवुव्व तमो हरंतं ॥ ७ ॥

सुसंवरं मोहनिरोहसारं, पंचप्पयारं विगयाइयारं ।
मुलोत्तराणेगगुणं पवित्तं, पालेह निच्चंपि हु सच्चरित्तं ॥ ८ ॥

बज्झं तहाभिंतरभेअमेअं, कयाइदुब्भेअकुकम्मभेअं ।
दुक्खक्खयत्थं कयपावनासं, तवं तवेहागमिअं[18] निरासं ॥ ९ ॥

---

(५)

महा[1]मुनि–स्तवः

जेणेस कोहजोहो, हणिओ हेलाइ खंतिखग्गेणं ।
समयासिअधारेणं,[19] तस्स महामुणिवइ ! नमो ते ॥ १ ॥

---

१ श्रीश्रीपालराजा श्रीअजितसेनमुनिवरं स्तौति ।

माणगिरिगरुअमयसिहर[20]अट्ठयं मद्दविक्कवज्जेणं[21] ।
जेण हणिऊण भग्गं, तस्स महामुणिवइ ! नमो ते ॥ २ ॥

मायामयविसवल्ली, जेणऽज्जवसारसरलकीलेणं ।
उक्खणिआ मूलाओ, तस्स महामुणिवइ ! नमो ते ॥ ३ ॥

जेणिच्छामुच्छावेलसंकुलो लोहसागरो गरुओ ।
तरिओ मुत्तितरीए, तस्स महामुणिवइ ! नमो ते ॥ ४ ॥

जेण कंदप्पसप्पो, विवेअसंवेअजणिअजंतेण ।
गयदप्पुव्विअ विहिओ, तस्स महामुणिवइ ! नमो ते ॥ ५ ॥

जेण निअमणपडाओ कोसुंभपयंगमंगसमरागो[22] ।
तिविहोऽवि हु निध्धूओ, तस्स महामुणिवइ ! नमो ते ॥ ६ ॥

दोसो दुट्ठगयंदो, वसीकओ जेण लीलमित्तेणं ।
उवसमसिणिनिउणेणं, तस्स महामुणिवइ ! नमो ते ॥ ७ ॥

मोहो महल्लमलोऽवि, पीडिओ ताडिऊण जेणेसो ।
वेरग्गमुग्गरेणं, तस्स महामुणिवइ ! नमो ते ॥ ८ ॥

एए अंतररिउणो, दुज्जेआ सयलसुरवरिंदेहिं ।
जेण जिआ लीलाए तस्स महामुणिवइ ! नमो ते ॥ ९ ॥

(६)

नवपद[1] विषयक देशना

भो भो भव्वा ! भवोहंमि, दुल्लहो माणुसो भवो ।
चुल्लगाईहिं नाएहिं, आगमंमि विआहिओ ॥ १ ॥
लद्धंमि माणुसे जम्मे, दुल्लहं खित्तमारिअं ।
जं दीसंति इहाणेगे, मिच्छा भिल्ला पुलिंदया ॥ २ ॥
आरिएसु अ खित्तेसु, दुल्लहं कुलमुत्तमं ।
जं वाहसुणियाईणं, कुले जायाण को गुणो ? ॥ ३ ॥
कुले लद्धेऽवि दुल्लभं, रुवमारुग्गमाउअं ।
विगला वाहिआऽकालमया दीसंति जं जणा ॥ ४ ॥
तेसु सव्वेसु लद्धेसु, दुल्लहो गुरुसंगमो ।
जं सया सव्वखित्तेसु, पाविज्जंति न साहुणो ॥ ५ ॥
महंतेणं च पुन्नेणं, जाएवि गुरुसंगमे ।
आलस्सईहिं रुद्धाणं, दुल्लहं गुरुदंसणं ॥ ६ ॥
कहं कहंपि जीवाणं, जाएऽवि गुरुदंसणे ।
वुग्गाहियाणं धुत्तेहिं, दुल्लहं पज्जुवासणं ॥ ७ ॥

---

[1] श्रीअजितसेनमहामुनेः ।

गुरुपासेऽवि पत्ताणं, दुल्लहा आगमस्सुई ।
जं निद्दा विगहाओअ, दुज्जआओ सयाइवि ॥ ८ ॥

संपत्ताए सुईएवि, तत्तबुद्धी सुदुल्लहा ।
जं सिंगारकहाईसु, सावहाणमणो जणो ॥ ९ ॥

उवइट्ठेऽवि तत्तंमि, सद्धा अच्चंतदुल्लहा ।
जं तत्तरुइणो जीवा, दीसंति विरला जए ॥ १० ॥

जायाए तत्तसद्धाए, तत्तबोहो सुदुल्लहो ।
जं आसन्नसिवा केई, तत्तं बुज्झंति जंतुणो ॥ ११ ॥

तत्तं दसविहो धम्मो, खंती मद्दव अज्जवं ।
मुत्ती तवो दया सच्चं, सोयं बंभमकिंचणं ॥ १२ ॥

खंतीनाममकोहत्तं, मद्दवं माणवज्जणं ।
अज्जवं सरलो भावो, मुत्ती निग्गंथया दुहा ॥ १३ ॥

तवो इच्छानिरोहो अ, दया जीवाण पालणं ।
सच्चं वक्कमसावज्जं, सोयं निम्मलचित्तया ॥ १४ ॥

बंभमट्ठारभेअस्स, मेहुणस्स विवज्जणं ।
अकिंचणं न मे कज्जं, केणाऽवित्थित्तिऽणीहया ॥ १५ ॥

एसो दसविहोद्देसो, धम्मो कप्पदुमोवमो ।
जीवाणं पुण्णपुण्णाणं, सव्वसुक्खाण दायगो ॥ १६ ॥

धम्मो चिंतामणी रम्मो, चिंतिअत्थाण दायगो ।
निम्मलो केवलालोअलच्छिविच्छिड्डिकारओ ॥ १७ ॥

कल्लाणिक्कमओ वित्तरूवो मेरूवमो इमो ।
सुमणाणं मणोतुट्ठिं, देइ धम्मो महोदओ ॥ १८ ॥

सुगुत्तसत्तखित्तीए सव्वस्सव य सोहिओ ।
धम्मो जयइ संवित्तो, जंबूदीवोवमो इमो ॥ १९ ॥

एसो अ जेहिं पन्नत्तो, तेऽवि तत्तं जिणुत्तमा ।
एअस्स फलभूआ य, सिद्धा तत्तं न संसओ ॥ २० ॥

दंसंता एयमायारं तत्तमायरिआवि हु ।
सिक्खयंता इमं सीसे, तत्तमुज्झावयावि अ ॥ २१ ॥

साहयंता इमं सम्मं, तत्तरूवा सुसाहुणो ।
एअस्स सद्दहाणेणं, सुतत्तं दंसणंपि हु ॥ २२ ॥

एअस्सेवाववोहेणं, तत्तं नाणंपि निच्छयं ।
एअस्साराहणारूवं, तत्तं चारित्तमेव य ॥ २३ ॥

इत्तो जा निज्जरा तीएरूवं तत्तं तवोऽवि अ ।
एवमेआइं सव्वाइं, पयाइं तत्तमुत्तमं ॥ २४ ॥

तत्तो नवपइ एसा, तत्तभूआविसेसओ ।
सव्वेहिं भव्वसत्तेहिं, नेआ झेआ य निच्चसो ॥ २५ ॥

एयं नवपयं भव्वा ! झायंता सुद्धमाणसा ।
अप्पणो चेव अप्पंमि, सक्खं पिक्खंति अप्पयं ॥ २६ ॥

अप्पंमि पिक्खिए जं च, खणे खिज्जइ कम्मयं ।
न तं तवेण तिव्वेण जम्मकोडीहिंखिज्जए ॥ २७ ॥

ता तुज्झे भो महाभागा ! नाऊणं तत्तमुत्तमं ।
सम्मं झाएह जं सिग्घं, पावेहाणंदसंपयं ॥ २८ ॥

---

(७)

*नवपदाराधन विधिः

नव चेईहरपडिमा, जिन्नुद्धाराइ विहिविहाणेणं ।
नाणाविहपूआहिं, अरिहंताराहणं कुणई ॥ १ ॥

सिद्धाणवि पडिमाणं, कारावणपूअणापणामेहिं ।
तग्गयमणझाणेणं, सिद्धपयाराहणं कुणइ ॥ २ ॥

भत्तिबहुमाणवंदणवेआवच्चाइकज्जमुज्जुत्तो ।
सुस्सूसणविहिनिउणो, आयरिआराहणं कुणइ ॥ ३ ॥

ठाणासणवसणाई, पढंतपाढंतयाण पूरंतो ।
दुविहभत्तिं कुणंतो, उवज्झायाराहणं कुणइ ॥ ४ ॥

---

* श्री श्रीपालनरपतिना कृता ।

अभिगमणवंदणनमंसणेहिं असणाइवसहिदाणेहिं ।
वेआवच्चाईहिं अ, साहुपयाराहणं कुणई ॥ ५ ॥

रहजत्ताकरणेणं, सुतित्थजत्ताहिं संघपूआहिं ।
सासणपभावणाहिं, सुदंसणाराहणं कुणइ ॥ ६ ॥

सिद्धंतसत्थपुत्थयकारावणरक्खणच्चणाईहिं ।
सज्झायभावणाईहिं, नाणपयाराहणं कुणइ ॥ ७ ॥

वयनिअमपालणेणं, विरइक्कपराण भत्तिकरणेणं ।
जइधम्मणुरागेणं, चारित्ताराहणं कुणइ ॥ ८ ॥

आसंसाइविरहिअं, बाहिरब्भिंतरं तवोकम्मं ।
जहसत्तीइ कुणंतो, सुद्धतवाराहणं कुणइ ॥ ९ ॥

---

(८)

*नवपद स्तवनम्

उप्पन्नसन्नाणमहोमयाणं, सपाडिहेरासणसंठिआणं ।
सद्देसणाणंदियसज्जणाणं, नमो नमो होउ सया जिणाणं ॥ १ ॥

सिद्धाणमाणंदरमालयाणं, नमो नमोऽणंतचउक्कयाणं ।
सूरीण दूरीकयकुग्गहाणं, नमो नमो सूरसमप्पभाणं ॥ २ ॥

---

* श्री श्रीपालनरपतिना कृतम् ।

सुत्तत्थवित्थारणतप्पराणं, नमो नमो वायगकुंजराणं।
साहूण संसाहिअसंजमाणं, नमो नमो सुद्धदयादमाणं ॥ ३ ॥

जिणुत्ततत्ते रुइलक्खणस्स, नमो नमो निम्मलदंसणस्स।
अन्नाणसम्मोहतमोहरस्स नमो नमो नाणदिवायरस्स ॥ ४ ॥

आराहिआऽखंडिअसक्कियस्स, नमो नमो संजमवीरियस्स।
कम्मदुमुम्मूलणकुंजरस्स, नमो नमो तिव्वतवोभरस्स ॥ ५ ॥

इअ नवपयसिद्धं, लद्धिविज्जासमिद्धं।
पयडिअसरवग्गं, ह्रींतिरेहासमग्गं ॥
दिसिवइसुरसारं, खोणिपीढावयारं,
तिजयविजयचक्कं, सिद्धचक्कं नमामि ॥ ६ ॥

---

(९)

*नवपदस्वरूपदर्शक-स्तवः

[१]

सेसतिभवेहिं मणुएहिं, जेहिं विहियारिहाइठाणेहिं।
अज्जिज्जइ जिणगुत्तं, ते अरिहंते पणिवयामि ॥ १ ॥

---

* श्री श्रीपालनृपतिना संदब्धः।

जे एगभवंतरिया, रायकुले उत्तमे अवयरंति ।
महसुमिणसूइअगुणा, ते अरिहंते पणिवयामि ॥ २ ॥

जेसिं जम्मंमि महिमं, दिसाकुमारीओ सुरवरिंदाय ।
कुव्वंति पहिट्ठमणा, ते अरिहंते पणिवयामि ॥ ३ ॥

आजम्मंपि हु जेसिं, देहे चत्तारि अइसया हुंति ।
लोगच्छेरयभूया, ते अरिहंते पणिवयामि ॥ ४ ॥

जे तिहुनाणसमग्गा, खीणं नाऊण भोगफलकम्मं ।
पडिवज्जंति चरित्तं, ते अरिहंते पणिवयामि ॥ ५ ॥

उवउत्ता अपमत्ता, सिअझाणा खवगसेणिहयमोहा ।
पावंति केवलं जे, ते अरिहंते पणिवयामि ॥ ६ ॥

कम्मक्खइया तह, सुरकया य जेसिं च अइसया हुंति ।
एगारसगुणवीसं, ते अरिहंते पणिवयामि ॥ ७ ॥

जे अट्ठपाडिहारेहिं, सोहिआ सेविया सुरिंदेहिं ।
विहरंति सयाकालं, ते अरिहंते पणिवयामि ॥ ८ ॥

पणतीसगुणगिराए, जेअ विबोहं कुणंति भव्वाणं ।
महिपीढे विहरंता, ते अरिहंते पणिवयामि ॥ ९ ॥

[२]

जे दुचरिमंमि समए, दुसयरिपयडिओ तेरस अ चरमे ।
खविऊण सिवं पत्ता, ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥ १ ॥

चरमंगतिभागोणावगाहणा जे अ एगसमयंमि ।
संपत्ता लोगग्गं, ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥ २ ॥

पुव्वपओगअसंगाबंधणछेयासहावतो वावि ।
जेसिं उड्ढा हु गई, ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥ ३ ॥

ईसीपब्भाराए उवरिं, खलु जोयणंमि लोगंते ।
जेसिं ठिई पसिद्धा, ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥ ४ ॥

जे अ अणंता अपुणब्भवा य असरीरया अणाबाहा ।
दंसणनाणुवउत्ता, ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥ ५ ॥

जेऽणंतगुणा विगुणा, इगतीसगुणा अ अहव अट्ठगुणा ।
सिद्धाणंतचउक्का, ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥ ६ ॥

जह नगरगुणे मिच्छो, जाणंतोऽवि हु कहेउमसमत्थो ।
तह जेसिं गुणे नाणी, ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥ ७ ॥

जे अ अणंतमणुत्तरमणोवमं, सासयं सयाणंदं ।
सिद्धिसुहं संपत्ता, ते सिद्धा दिंतु मे सिद्धिं ॥ ८ ॥

---

[३]

जे पंच विहायारं, आयरमाणा सया पयासंति ।
लोयाणणुग्गहत्थं, ते आयरिए नमंसामि ॥ १ ॥

देसकुलजाइरूवाइएहिं बहुगुणगणेहिं संजुत्ता ।
जे हुंति जुगे पवरा ते आयरिए नमंसामि ॥ २ ॥

जे निच्चमप्पमत्ता, विगहविरत्ता कसायपरिचत्ता ।
धम्मोवएससत्ता, ते आयरिए नमंसामि ॥ ३ ॥

जेसारणवारणचोयणाहिं पडिचोयणाहिं निच्चंपि ।
सारंति नियं गच्छं, ते आयरिए नमंसामि ॥ ४ ॥

जे मुणियसुत्तसारा, परोवयारिक्कतप्परा दिंति ।
तत्तोवएसदाणं, ते आयरिए नमंसामि ॥ ५ ॥

अत्थमिए जिणसूरे, केवलिचंदेऽवि जे पईवुव्व ।
पयडंति इह पयत्थे, ते आयरिए नमंसामि ॥ ६ ॥

जे पावभरक्कंते, निवडंते भवमहंधकूवंमि ।
नित्थारयंति जीए, ते आयरिए नमंसामि ॥ ७ ॥

जे मायतायबांधवपमुहेहिंतोऽवि इत्थ जीवाणं ।
साहंति हिअं कज्जं, ते आयरिए नमंसामि ॥ ८ ॥

जे बहुलद्धिसमिद्धा, साइसया सासणं पभावंति ।
रायसमा निच्चिता, ते आयरिए नमंसामि ॥ ९ ॥

---

[४]

जे बारसंगसज्झायपारगा धारगा तयत्थाणं ।
तदुभयवित्थाररया, तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥ १ ॥

पाहाणसमाणेऽवि हु, कुणंति जे सुत्तधारया सीसे ।
सयलजणपूयणिज्जे, तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥ २ ॥

मोहाहिदट्ठनट्ठप्पनाणजीवाण चेयणं दिंति ।
जे केऽवि नरिंदा इव, तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥ ३ ॥

अन्नाणवाहिविहुराण, पाणिणं सुअरसायणं सारं ।
जे दिंति महाविज्जा, तेऽहं झाएमि उज्जाए ॥ ४ ॥

गुणवणभंजणमणगयदमणंकुससरिसनाणदाणं जे ।
दिंति सया भवियाणं, तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥ ५ ॥

दिणमासजीवियंताइं, सेसदाणाइ मुणिउं जे नाणं ।
मुत्तितं दिंति सया, तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥ ६ ॥

अन्नाणंधे लोयाण, लोयणे जे पसत्थसत्थमुहा ।
उग्घाडयंति सम्मं, तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥ ७ ॥

बावन्नवण्णचंदणरसेण जे लोयपावतावाइं ।
उवसामयंति सहसा, तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥ ८ ॥

जे रायकुमरतुल्ला, गणतत्तिपरा अ सूरिपयजुग्गा ।
वायंति सीसवग्गं, तेऽहं झाएमि उज्झाए ॥ ९ ॥

---

[५]

जे दंसणनाणचरित्तरूवरयणत्तएण इक्केण ।
साहंति मुक्खमग्गं, ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ १ ॥

गयदुविहदुट्ठझाणा, जे झाइअधम्मसुक्कझाणा य ।
सिक्खंति दुविह सिक्खं, ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ २ ॥

गुत्तित्तएण गुत्ता, तिसल्लरहिया तिगारवविमुक्का ।
जे पालयंति तिपइं, ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ ३ ॥

चउविहविगहविरत्ता, जे चउविहचउकसायपरिचत्ता ।
चउहा दिसंति धम्मं, ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ ४ ॥

उज्झिअपंचपमाया, निज्जिअपंचिंदिया य पालेंति ।
पंचेव समिईओ, ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ ५ ॥

छज्जीवकायरक्खणनिउणा हासाइछक्कमुक्का जे ।
धारंति अ वयछक्कं, तें सव्वे साहुणो वंदे ॥ ६ ॥

जे जियसत्तभया, गयअट्ठमया नवावि बंभगुत्तीओ ।
पालंति अप्पमत्ता, ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ ७ ॥

दसविहधम्मं तह, बारसेव पडिमाओ जे अ कुव्वंति ।
बारसविहं तवोवि अ, ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ ८ ॥

जे सत्तरसंजमंगा, उव्वूढाट्ठारसहससीलंगा ।
विहरंति कम्मभूमिसु, ते सव्वे साहुणो वंदे ॥ ९ ॥

---

[६]

जं सुद्धदेवगुरुधम्मतत्तसंपत्तिसद्दहणरूवं ।
वण्णिज्जइ सम्मत्तं, तं सम्मद्दंसणं नमिमो ॥ १ ॥

जावेगकोडाकोडीसागरसेसा न होइ कम्मठिई ।
ताव न जं पाविज्जइ, तं सम्मद्दंसणं नमिमो ॥ २ ॥

भव्वाणमद्धपुग्गलपरियट्टवसेसभवनिवासाणं ।
जं होइ गंठिभेए, तं सम्मद्दंसणं नमिमो ॥ ३ ॥

जं च तिहा उवसमिअं, खओवसमियं च खाइयं चेव ।
भणिअं जिणिंदसमए, तं सम्मद्दंसणं नमिमो ॥ ४ ॥

पण वारा उवसमिअं, खओवसमियं असंखसो होइ ।
जं खाइअं च इक्कसि, तं सम्मद्दंसणं नमिमो ॥ ५ ॥

जं धम्मदुममूलं, भाविज्जइ धम्मपुरप्पवेसं च ।
धम्मभवणपीढं वा, तं सम्मद्दंसणं नमिमो ॥ ६ ॥

जं धम्मजयाहारं, उवसमरसभायणं च जं बिंति ।
मुणिणो गुणरयणनिहिं, तं सम्मद्दंसणं नमिमो ॥ ७ ॥

जेण विणा नाणंपि हु अपमाणं निप्फलं च चारित्तं ।
मुक्खोऽवि नेव लब्भइ, तं सम्मद्दंसणं नमिमो ॥ ८ ॥

जं सद्दहाणलक्खणभूसणपमुहेहिं बहुअभेएहिं ।
वण्णिज्जइ समयंमी, तं सम्मद्दंसणं नमिमो ॥ ९ ॥

---

[७]

सव्वन्नुपणीयागमभणियाण जहट्ठियाण तत्ताणं ।
जो सुद्धो अवबोहो तं सन्नाणं मह पमाणं ॥ १ ॥

जेणं भक्खाभक्खं पिज्जापिज्जं अगम्ममवि गम्मं ।
किच्चाकिच्चं नज्जइ तं सन्नाणं मह पमाणं ॥ २ ॥

सयलकिरिआण मूलं सद्धा लोअंमि तीइ सद्धाए ।
जं किर हवेइ मूलं तं सन्नाणं मह पमाणं ॥ ३ ॥

जं मइसुअओहिमयं मणपज्जवरूवकेवलमयं च ।
पंचविहं सुपसिद्धं, तं सन्नाणं मह पमाणं ॥ ४ ॥

केवलमणोहिणंपि हु वयणं लोयाण कुणइ उवयारं ।
जं सुयमइरूवेणं तं सन्नाणं मह पमाणं ॥ ५ ॥

सुयनाणं चेव दुवालसंगरूवं परूविअं जत्थ ।
लोयाणुवयारकरं तं सन्नाणं मह पमाणं ॥ ६ ॥

तत्तुच्चिय जं भव्वा पढंति पाढंति दिंति निसुणंति ।
पूयंति लिहावंति अ तं सन्नाणं मह पमाणं ॥ ७ ॥

जस्स बलेणं अज्जवि नज्जइ तियलोयगोयरवियारो ।
करगहियामलयंपिव तं सन्नाणं मह पमाणं ॥ ८ ॥

जस्स पसाएण जणा हवंति लोयंमि पुच्छणिज्जा य ।
पूज्जा य वण्णणिज्जा तं सन्नाणं मह पमाणं ॥ ९ ॥

---

[८]

जं देसविरइरूवं सव्वविरइरूवयं च अणुकमसो ।
होइ गिहीण जईणं तं चारित्तं जए जयइ ॥ १ ॥

नाणंपि दंसणंपि अ संपुण्णफलं फलंति जीवाणं ।
जेणं चिअ परिअरिया तं चारित्तं जए जयइ ॥ २ ॥

जं च जईण जहुत्तरफलं सुसामाइयाइ पंचविहं ।
सुपसिद्धं जिणसमए तं चारित्तं जए जयइ ॥ ३ ॥

जं पडिवन्नं परिपालियं च सम्मं परूवियं दिन्नं ।
अन्नेसिं च जिणेहिं वि तं चारित्तं जए जयइ ॥ ४ ॥

छक्खंडाणमखंडं रज्जसिरिं चइअ चक्कवट्टीहिं ।
जं सम्मं पडिवन्नं तं चारित्तं जए जयइ ॥ ५ ॥

जं पडिवन्ना दमगाइणोऽवि जीवा हवंति तियलोए ।
सयलजणपूयणिज्जा तं चारित्तं जए जयइ ॥ ६ ॥

जं पालंताण मुणीसराण पाए णमंति साणंदा ।
देविंददाणविंदा तं चारित्तं जए जयइ ॥ ७ ॥

जं चाणंतगुणंपि हु वण्णिज्जइ सतरभेअदसभेअं ।
समयंमि मुणिवरेहिं तं चारित्तं जए जयइ ॥ ८ ॥

समिईओ गुत्तीओ खंतीपमुहाओ मित्तियाईओ ।
साहंति जस्स सिद्धिं तं चारित्तं जए जयइ ॥ ९ ॥

---

[९]

बाहिरमब्भिंतरयं बारसभेयं जहुत्तरगुणं जं ।
वण्णिज्जइ जिणसमए तं तवपयमेस वंदामि ॥ १ ॥

तब्भवसिद्धिं जाणंतएहिं सिरिरिसहनाहपमुहेहिं ।
तित्थयरेहिं कयं जं तं तवपयमेस वंदामि ॥ २ ॥

जेण खमासहिएणं कएण कम्माणमवि निकायाणं ।
जायइ खओ खणेणं तं तवपयमेस वंदामि ॥ ३ ॥

जेणं चिय जलणेण व जीवसुवन्नाउ कम्मकिट्टाइं ।
फिट्टंति तक्खणं चिय तं तवपयमेस वंदामि ॥ ४ ॥

जस्स पसाएण धुवं हवंति नाणाविहाउ लद्धीओ ।
आमोसहिपमुहाओ तं तवपयमेस वंदामि ॥ ५ ॥

कप्पतरुस्स व जस्सेरिसाउ सुरनरवराण रिद्धीओ ।
कुसुमाइं फलं च सिवं तं तवपयमेस वंदामि ॥ ६ ॥

अच्चंतमसज्झाइं लीलाइवि सव्वलोयकज्जाइं ।
सिज्झंति झत्ति जेणं तं तवपयमेस वंदामि ॥ ७ ॥

दहिदुव्वियाइमंगलपयत्थसत्थंमि मंगलं पढमं ।
जं वन्निज्जइ लोए तं तवपयमेस वंदामि ॥ ८ ॥

आत्मनि नवपदमयता

[१०]

जेवि य संकप्पवियप्पवज्जिया हुंति निम्मलप्पाणो ।
ते चेव नवपयाइं नवसु पएसुं च ते चेव ॥ १ ॥

जं झाया झायंतो अरिहंतं रूवसुपयपिंडत्थं ।
अरिहंतपयमयं चिय अप्पं पिक्खेइ पच्चक्खं ॥ २ ॥

रूवाईअसहावो केवलसन्नाणदंसणाणंदो ।
जो चेव य परमप्पा सो सिद्धप्पा न संदेहो ॥ ३ ॥

पंचप्पत्थाणमयायरियमहामंतझाणलीलमणो ।
पंचविहायारमओ आयच्चिअ होइ आयरिओ ॥ ४ ॥

महपाणज्झायदुवालसंगसुत्तत्थतदुभयरहस्सो ।
सज्झायतप्परप्पा एसप्पा चेव उवज्झाओ ॥ ५ ॥

रयणत्तएण सिवपहसंसाहणसावहाणजोगतिगो ।
साहू हवेइ एसो अप्पुच्चिय निच्चमपमत्तो ॥ ६ ॥

मोहस्स खओवसमा समसंवेगाइलक्खणं परमं ।
सुहपरिणाममयं नियमप्पाणं दंसणं मुणह ॥ ७ ॥

नाणावरणस्स खओवसमेण जहाट्ठियाण तत्ताणं ।
सुद्धावबोहरूवो अप्पुच्चिय वुच्चए नाणं ॥ ८ ॥

सोलसकसायनवनोकसायरहियं विसुद्धलेसागं ।
ससहावठिअं अप्पाणमेव जाणेह चारित्तं ॥ ९ ॥

इच्छानिरोहओ सुद्धसंवरो परिणओ अ समयाए ।
कम्माइं निज्जरंतो तवोमओ चेव एसप्पा ॥ १० ॥

एवं च ठिए अप्पाणमेव नवपयमयं विआणित्ता ।
अप्पंमि चेव निच्चं लीणमणा होह भो भविया ॥ ११ ॥

---

*श्री परमात्म-स्तवनम्

नमस्ते जगदानन्द !, मोक्षमार्गविधायक ! ।
जिनेन्द्र विदिताशेषभाव ! सद्भावनायक ! ॥ १ ॥

प्रलीनाशेषसंसारविस्तार ! परमेश्वर ! ।
नमस्ते वाक्पथातीत !, त्रिलोकनरशेखर ! ॥ २ ॥

भवाब्धिपतितानन्तसत्त्वसन्तानतारक ! ।
घोरसंसारकान्तारसार्थवाह ! नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥

अनन्तपरमानन्दपूर्णधामव्यवस्थितम् ।
भवन्तं भक्तितः साक्षात्पश्यतीह जनो जिन ! ॥ ४ ॥

---

* श्री सुबुद्धिमन्त्रिणा संदब्धम्

स्तुवतस्तावकं बिम्बमन्यथा कथमीदृशः ।
प्रमोदातिशयश्चित्ते जायते भुवनातिगः ॥ ५ ॥

पापाणुजनितस्तावत् तापः संसारिचेतसाम् ।
यावत्तेषां सदानन्द !, न मध्ये नाथ ! वर्तसे ॥ ६ ॥

येषां पुनर्विवर्तेथा, नाथ चित्तेषु देहिनाम् ।
पापाणवः क्षणात्तेषां, ध्वंसमायान्ति सर्वथा ॥ ७ ॥

ततस्ते द्रविताशेषपापपङ्कतया जनाः ।
सद्भावामृतसंसिक्ता, मोदन्ते नाथ सर्वदा ॥ ८ ॥

ते वराका न मुच्यन्तां, रागादिचरटैः कथम् ।
येषां नाथ भवान्नास्ति, तन्निसानाथ्य[1] कारकः ॥ ९ ॥

भवन्तमुररी[2] कृत्य, नाथं निःशङ्कमानसाः ।
शिवं यान्ति मदादीनां, विधाय गलपादिकाम्[3] ॥ १० ॥

न्यपतिष्यदिदं नाथ !, जगन्नरककूपके ।
अहिंसाहस्तदानेन यदि त्वं नाधरिष्यथाः ॥ ११ ॥

विलीनसकलक्लेशं निर्विकारं मनोहरम् ।
शरीरं पश्यतां नाथ, तावकीनमदो वरम् ॥ १२ ॥

अनन्तवीर्यः सर्वज्ञो, वीतरागस्त्वमञ्जसा ।
न भासि यद्भव्यानां तत्तेषां पापजृम्भितम् ॥ १३ ॥

रागद्वेषमहामोहसूचकैर्वीतकल्मष[4] ! ।
हास्यहेतिविला[5]साक्षमालाद्यै र्हीन ! ते नमः ॥ १४ ॥

अनन्तगुणसंपूर्ण ! कियद्वात्र वदिष्यति ।
तावकस्तवने नाथ जडबुद्धिरयं जनः ॥ १५ ॥

तथापि गाढसद्भावबद्धोऽत्यर्थमयं जनः ।
सद्भावोऽप्यथवा नाथ भवतैवावबुध्यते ॥ १६ ॥

तदस्य करुणां कृत्वा विधातव्या भवे भवे ।
भवोच्छेदकरी नाथ भक्तिरात्मनि निश्चला ॥ १७ ॥

---

*श्री परमात्म-स्तवनम्

अपारघोरसंसारनिमग्नजनतारक !
किमेष घोरसंसारे, नाथ ! ते विस्मृतो जनः ॥ १ ॥

सद्भावप्रतिपन्नस्य, तारणे लोकबान्धव ! ।
त्वयाऽस्य भुवनान्द !, येनाद्यापि विलम्ब्यते ॥ २ ॥

---

* श्रीविमलेन संदब्धम्

आपन्नशरणे[6] दीने, करुणामृतसागर !
न युक्तमीदृशं कर्तुं, जने नाथ! भवादृशाम् ॥ ३ ॥

भीमेऽहं भवकान्तारे, मृगशावकसन्निभः ।
विमुक्तो भवता नाथ !, किमेकाकी दयालुना ॥ ४ ॥

इतश्चेतश्च निक्षिप्तचक्षुस्तरलतारकः ।
निरालम्बो भयेनैव, विनश्येऽहं त्वयाविना ॥ ५ ॥

अनन्तवीर्यसम्भार !, जगदालम्बदायक !
विधेहि निर्भयं नाथ !, मामुत्तार्य भवाटवीम् ॥ ६ ॥

न भास्करादृते नाथ !, कमलाकरबोधनम् ।
यथा तथा जगन्नेत्र !, त्वदृते नास्ति निर्वृतिः ॥ ७ ॥

किमेष कर्मणां दोषः, किं ममैव दुरात्मनः ।
किं वास्य हतकालस्य, किं वा मे नास्ति भव्यता ॥ ८ ॥

किं वा सद्भक्तिनिर्ग्राह्य[7] !, सद्भक्तिस्त्वयि तादृशी ।
निश्चलाद्यापि संपन्ना, न मे भूवनभूषण ! ॥ ९ ॥

लीलादलितनिःशेषकर्मजालकृपापर ! ।
मुक्तिमर्थयते नाथ !, येनाद्यापि न दीयते ॥ १० ॥

स्फुटं च जगदालम्ब ! नाथेदं ते निवेद्यते ।
नास्तीह शरणं लोके, भगवन्तं विमुच्य मे ॥ ११ ॥

त्वं माता त्वं पिता बन्धु स्त्वं स्वामी त्वं च मे गुरुः ।
त्वमेव जगदानन्द !, जीवितं जीवितेश्वर ! ॥ १२ ॥

त्वयावधीरितो[8] नाथ ! मीनवज्जलवर्जिते ।
निराशो दैन्यमालम्ब्य, म्रियेऽहं जगतीतले ॥ १३ ॥

स्वसंवेदनसिद्धं मे, निश्चलं त्वयि मानसम् ।
साक्षाद्भूतान्यभावस्य[9] यद्वा किं ते निवेद्यताम् ॥ १४ ॥

मच्चितं पद्मवन्नाथ !, दृष्टे भुवनभास्करे !
त्वयीहविकसंत्येव विदलत्कर्मकोशकम्[10] ॥ १५ ॥

अनन्तजन्तुसन्तानव्यापाराक्षणिकस्य ते ।
ममोपरिजगन्नाथ !, न जाने कीदृशी दया ॥ १६ ॥

समुन्नते जगन्नाथ ! त्वयि सद्धर्मनीरदे ॥
नृत्यत्येष मयूराऽऽभो मद्दोर्दण्डशिखण्डिकः[11] ॥ १७ ॥

तदस्य किमियं भक्तिः किमुन्मादोऽयमीदृशः
दीयतां वचनं नाथ ! कृपया मे निवेद्यताम् ॥ १८ ॥

मञ्जरीराजिते नाथ ! सच्चूते कलकोकिलः ।
यथा दृष्टे भवत्येव लसत्कलकलाकुलः ॥ १९ ॥

तथैष सरसानन्दबिन्दुसन्दोहदायक ! ।
त्वयि दृष्टे भवत्येवं मूर्खोऽपि मुखरो[12] जनः ॥ २० ॥

तदेनं माऽवमन्येथा नाथाऽसंबद्धभाषिणम् ।
मत्वा जनं जगज्ज्येष्ठ ! सन्तो हि नतवत्सलाः ॥ २१ ॥

किं बालोऽलीकवाचाल आलजालं लपन्नपि ।
न जायते जगन्नाथ ! पितुरानन्दवर्धनः ॥ २२ ॥

तथाऽश्लीलाक्षरोल्लापजल्पाकोऽयं[12] जनस्तव ।
किं विवर्धयते नाथ ! तोषं किं नेति कथ्यताम् ॥ २३ ॥

अनाद्यभ्यासयोगेन विषयाऽशुचिकर्दमे ।
गर्ते[14] सूकरसंकाशं, याति मे चटुलं मनः ॥ २४ ॥

न चाहं नाथ ! शक्नोमि तन्निवारयितुं चलम् ।
अतः प्रसीद तद्देव ! देव[15] ! वारय वारय ॥ २५ ॥

किं ममापि विकल्पोऽस्ति, नाथ ! तावकशासने ।
येनैवं लपतोऽधीश नोत्तरं मम दीयते ॥ २६ ॥

आरूढमियतीं कोटीं तव किङ्करतां गतम् ।
मामप्येतेऽनुधावन्ति किमद्यापि परीषहाः ॥ २७ ॥

किं चामी प्रणताशेषजनवीर्यविधायक ! ।
उपसर्गा ममाद्यापि, पृष्ठं मुञ्चन्ति नो खलाः ॥ २८ ॥

पश्यन्नपि जगत्सर्वं, नाथ ! मां पुरतः स्थितम् ।
कषायारातिवर्गेण[16] किं न पश्यसि पीडितम् ॥ २९ ॥

कषायाभिद्रुतं वीक्ष्य, मां हि कारूणिकस्य ते ।
विमोचने समर्थस्य नोपेक्षा नाथ ! युज्यते ॥ ३० ॥

विलोकिते महाभाग ! त्वयि संसारपारगे ।
आसितुं क्षणमप्येकं संसारे नास्ति मे रतिः ॥ ३१ ॥

किं तु किं करवाणीह नाथ ! मामेष दारुणः ।
आन्तरो[17] रिपुसङ्घातः प्रतिबध्नाति सत्वरम् ॥ ३२ ॥

विधाय मयि कारूण्यं, तदेनं विनिवारय ।
उद्दामलीलया नाथ ! येनाऽऽगच्छामि तेऽन्तिके ॥ ३३ ॥

तवायत्तो भवो[18] धीर ! भवोत्तारोऽपि[19] ते वशः ।
एवं व्यवस्थिते किं वा स्थीयते परमेश्वर ! ॥ ३४ ॥

तद्दीयतां भवोत्तारो मा विलम्बो विधीयताम् ।
नाथ ! [10]निर्गतिकोल्लापं न शृण्वन्ति ? भवादृशाः ॥ ३५ ॥

---

*श्री धर्मस्वरूप-दर्शनम्

धर्मरत्नं भवपुरे, चतुर्गतिचतुष्पथे ।
स्वर्णहट्टं नृजन्माऽऽप्य, सद्द्रव्यैरेव लभ्यते ॥ १ ॥

तत्प्रायः सुलभं येन, भवन्ति विपुलाः श्रियः ।
दुर्लभं तत्पुनर्भाग्यं, येन धर्मे मतिर्भवेत् ॥ २ ॥

मालास्वप्रेक्षणमिदं, सुप्तानां मोहनिद्रया ।
धर्मशून्यमधीतादि तत्रो[1]त्स्वप्नायितं पुनः ॥ ३ ॥

अघाटमपि[2] कल्याणं, सुघटादपि कूटतः[3] ।
यथा प्रशस्यते तद्वद्, मुग्धोऽपि सुकृती नरः ॥ ४ ॥

[4]असाऽवनक्षरो लेखो, निर्देवं देवमंदिरम् ।
निर्जलं च सरो धर्मं, विना यन्मानुषो भवः ॥ ५ ॥

धनैश्वर्योऽभिमानेन, प्रमादमदमोहिताः ।
दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं, हारयध्वं मुधैव मा ॥ ६ ॥

---

* दर्शयिता श्रीहरिश्चन्द्रमहामुनिः,

छिन्नमूलो यथा वृक्षो, गतशिर्षो यथा भटः ।
धर्महीनो धनी तद्वत्, कियत्कालं ललिष्यति ॥ ७ ॥

धराऽन्तःस्थं तरोर्मूलमुच्छ्रयेणाऽनुमीयते ।
अदृष्टोऽपि तथा प्राच्यधर्मो लक्ष्येत संपदा ॥ ८ ॥

मूलभूतमतो धर्मं सिक्त्वा भोगफलं बुधाः ।
गृह्णन्ति बहुशो मूढास्तमुच्छिद्यैकदा पुनः ॥ ९ ॥

आस्तां सिद्धिगतं सौख्यं, मनोऽभीष्टं यदैहिकम्[5] ।
जनास्तदपि धर्माख्यवृक्षस्य कुसुमोपमम् ॥ १० ॥

कुलं गतमलं कामाऽनुरूपं रूपमव्ययम् ।
विश्वभोग्यं च सौभाग्यं, श्रीविलासो विकस्वरः ॥ ११ ॥

अनवद्या पुनर्विद्या, कीर्त्तिः स्फूर्तिमती सती ।
अभिरामो गुणग्रामः, सर्वं धर्मादवाप्यते ॥ १२ ॥ (युग्मम्)

यद्यपि ज्वरितस्याऽर्त्तिर्जन्तोर्जनयते जलम् ।
तथाऽप्युष्णीकृतं तस्य, मुख्यपथ्यं तदेव हि ॥ १३ ॥

तथा प्राक्कर्मदोषेण, पीड्यमानस्य यद्यपि ।
धर्मो न रतये, कार्यो नीरसोऽपि तथाऽप्यसौ ॥ १४ ॥

अतो धर्मं न मुञ्चन्ति, कथञ्चन विचक्षणाः ।
विपद्यऽपि गता बाढम्, मुच्यते किमु संपदि ? ॥ १५ ॥

---

*श्रीतत्त्वत्रयी स्वरूपम्

मरुस्थलपथे यद्वद्दुष्प्रापः कल्पपादपः ।
तथा भवेऽत्र जन्तूनां मानुष्यमतिदुर्लभम् ॥ १ ॥

आर्यदेशश्च तत्राऽपि, सुकुलं निर्मला मतिः ।
विशिष्टगुरुसम्पर्को भूरिभाग्यैरवाप्यते ॥ २ ॥

आसादिते पुनस्तस्मिन्नऽक्षयं सुखमिच्छुभिः ।
धारणीयं हृदि ज्ञात्वा, सम्यक्सम्यक्त्वमच्युतम् ॥ ३ ॥

यथा विना प्रतिष्ठानकाष्ठं पोतो न सिध्यति ।
प्रासादो निष्ठुरं पीठबन्धं च न विना भवेत् ॥ ४ ॥

गाढमूलं विना प्रौढिं, नाऽऽसादयति पादपः ।
सम्यक्त्वं च विना तद्वद्धर्मो नैवाऽवतिष्ठते ॥ ५ ॥

तद्देवगुरुधर्माणां, तत्त्वनिश्चयलक्षणम् ।
भवे भवति भव्यानामभव्यानां कदापि न ॥ ६ ॥

---

* दर्शयिता श्रीनरवाहनराजर्षिः,

विश्वं विश्वमऽपि व्याप्तं, रागद्वेषादिभिर्भृशम् ।
निःशेषा यस्य ते क्षीणा, वीतरागः स देवता ॥ ७ ॥

शान्तचित्तवचस्काये, सर्वसत्त्वोपकारिणि ।
वीतरागे विसंवादः, सहृदां हृदये कुतः ? ॥ ८ ॥

दुःखगर्भं सुखं रागे, निरागत्वे निरन्तरम् ।
तत् पुनः प्राप्यते देववीतरागप्रसादतः ॥ ९ ॥

यादृक् संसेव्यते स्वामी, लेश्या भवति तादृशी ।
वीतरागे ह्यऽतो नाथे, नीरागं जायते मनः ॥ १० ॥

स्वपरोत्तारणे काष्ठयानतुल्यो भवाम्बुधौ ।
संविग्नः स्याद् गुरुर्धीरः, सदा सदुपदेशकः ॥ ११ ॥

अन्तःपरिग्रहो रागो, बहिस्त्वऽनुचितोपधिः ।
स द्विधाऽप्युज्झितो येन, स महात्मा गुरुर्गुरुः ॥ १२ ॥

लोकेऽपि वन्द्यते त्यक्तबहिरन्तःपरिग्रहः ।
अत्र निस्तुषरागाणामक्षतानां निदर्शनम् ॥ १३ ॥

अश्रीदोऽपि गुरुः सेव्यश्चित्तक्लेशोपशान्तये ।
अफलोऽपि तरुस्तापं, हरते मार्गयायिनाम् ॥ १४ ॥

धर्मतत्त्वं त्विदं ज्ञेयं, भुवनत्रयसम्मतम् ।
यद्दया सर्वभूतेषु, त्रसेषु स्थावरेषु च ॥ १५ ॥

मूलमन्त्रं विना सिद्धिर्मालामन्त्रेण नो यथा ।
भूयोभिरपि नो कृच्छ्रैस्तथा धर्मो दयां विना ॥ १६ ॥

तद् ध्येयं मनसा, तच्च वाच्यं वाचा मनिषिभिः ।
चेष्टितव्यं तदङ्गेन, येन कोऽपि न पीड्यते ॥ १७ ॥

यथाऽऽत्मनः प्रियं वाञ्छेत्, ततः कुर्वीत तत् परे ।
बुभुक्षुः शालिधान्यं यः, क्षेत्रेऽपि वपते स तत् ॥ १८ ॥

अहिंसैव परो धर्मः, शेषस्तु व्रतविस्तरः ।
अस्यैव परिरक्षायै, पादपस्य यथा वृतिः ॥ १९ ॥

इति तत्त्वत्रयीरूपं, शमप्रमुखलक्षणैः ।
लक्षितं पञ्चभिर्धर्मस्थैर्याद्यैर्भूषितं पुनः ॥ २० ॥

सम्यक्त्वरत्नं यत्नेन, धार्यं चित्तकरण्डके ।
रक्ष्यं शङ्कादिचौरेभ्यः, सहगामि भवाऽन्तरे ॥ २१ ॥

इतरोऽपीह नो मन्त्रो, नृणां सिद्ध्यति शङ्कया ।
सम्यक्त्वाऽऽख्य महामन्त्रः, किमु शाश्वतसौख्यदः? ॥ २२ ॥

चारित्रयाने भग्नेऽपि, गुणमाणिक्यपूरिते ।
तरत्येव भवाऽम्भोधिं, सम्यक्त्वफलकग्रहात् ॥ २३ ॥

तमोग्रस्तस्य सामस्त्याद्, जीवेन्दोर्यदि जायते ।
सच्चैतन्यकला काऽपि, व्यक्ता मुक्तिस्ततो ध्रुवम् ॥ २४ ॥

वृद्धिमायाति सद्धर्मः, स्तोकोऽपि वटबीजवत् ।
परं कृपणवत् कोऽपि, न ग्रन्थफलमश्नुते ॥ २५ ॥

निसर्गरुचिमुख्याश्च, कथ्यन्ते दशधा श्रुते ।
तारतम्यविभागेन, सर्वे सम्यक्त्वधारिणः ॥ २६ ॥

तथाहि—द्रव्यक्षेत्रादिभावा ये, जिनैःख्यातास्तथैव यः ।
श्रद्धत्ते स्वयमेवैतान्, स निसर्गरुचिःस्मृतः ॥ २७ ॥

यः परेणोपदिष्टांस्तु, च्छद्मस्थेन जिनेन वा ।
तानेव मन्यते भावानुपदेशरुचिः स वै ॥ २८ ॥

रागो द्वेषश्च मोहश्च, यस्याऽज्ञानं क्षयं गतम् ।
तस्याज्ञायां रुचिं कुर्वन्, इहाज्ञारुचिरिष्यते ॥ २९ ॥

अधीयानः श्रुतं तेन, सम्यक्त्वमत्रगाहते ।
अङ्गाऽनङ्गप्रविष्टेन, यः स सूत्ररुचिः स्मृतः ॥ ३० ॥

स बीजरुचिरासाद्य, पदमेकमनेकधा ।
सोऽध्यापयति सम्यक्त्वे, तैलबिन्दुमिवोदके ॥ ३१ ॥

श्रीसर्वज्ञागमो येन, दृष्टः स्पष्टार्थतोऽखिलः ।
आगमज्ञैरभिगमरुचिरेषोऽभिधीयते ॥ ३२ ॥

द्रव्याणां निखिला भावाः, प्रमाणैरखिलैर्नयैः ।
उपलम्भं गता यस्य, स विस्ताररुचिर्मतः ॥ ३३ ॥

ज्ञानदर्शनचारित्रतपःसमितिगुप्तिषु ।
यः क्रियासु रतो नित्यं, स विज्ञेयः क्रियारुचिः ॥ ३४ ॥

आज्ञाप्रवचने जैने, कुदृष्टावनभिग्रहः ।
यः स्याद् भद्रकभावेन, तं संक्षेपरुचिं विदुः ॥ ३५ ॥

यो धर्मं श्रुतचारित्राऽस्तिकायविषयं खलु ।
श्रद्दधाति जिनाख्यातं, स धर्मरुचिरिष्यते ॥ ३६ ॥

इत्येवं सर्वभेदानां, मानसं मूलकारणम् ।
तस्मात् तदेव कर्तव्यमेकतानं मनीषिणा ॥ ३७ ॥

---

*श्री युगादि जिन-स्तवः

जय त्रिभुवनाधीश !, श्री युगादिजिनेश्वर ! ।
नम्रामरशिरोरत्नदीपनीराजितक्रम ! ॥ १ ॥

अज्ञानतिमिरं हत्वा, नवभानुरिव प्रभो ! ।
प्रकाशितजगद्विद्याव्यवहार ! नमोऽस्तु ते ॥ २ ॥

निष्कषायतया चेतःपटे शुभ्रगुणे तव ।
रागो लगतु मा किंतु, तेनाऽरञ्जि कथं जगत् ? ॥ ३ ॥

---

* श्री ललिताङ्गकुमारेण सन्दृब्धः,

सद्गन्धशीतलस्वच्छौ नत्वा पादौ तव स्तवम् ।
कृत्वा श्रुत्वा च नाथ ! स्यादऽक्षाणां युगपत् सुखम् ॥४॥

त्रिलोकीसुभगं वीक्ष्य, त्वां चलाया अपि प्रभो ! ।
स्तम्भस्वेदार्द्रताभावो, जायते कस्य नो दृशः ? ॥ ५ ॥

शमार्द्र ! सुकृताऽऽराम ! भवभ्रान्तिभवं मम ।
त्वत्पादपादपच्छाया, तापं निर्वापयेत् चिरात् ॥ ६ ॥

तच्चित्रं यन्निरालम्बं, चिरं भ्रान्तं भवार्णवे ।
त्वां चालम्ब्य मनो मे ऽद्य, शमनीरे ममज्ज यत् ॥ ७ ॥

धर्मकोशाद् धनं दत्ते, सेवकेभ्यः प्रभुर्भवान् ।
प्रसन्नः समतावस्तु, कस्मैचन पुनर्निजम् ॥ ८ ॥

तथा मम जगन्नाथ ! प्रसीद नतवत्सल ! ।
यथा क्षणमपि स्वामिन्, नैवोत्तरसि चेतसः ॥ ९ ॥

सर्वोऽपि वदति श्राद्धो, यत्त्वं मे नाथ जीवितम् ।
नाहं तु जीवितं येन, चलं मे त्वं तु निश्चलः ॥ १० ॥

न कुले न बले रूपे, न च न श्रीषु ते विभोः ।
यत् किंचिद् वीतरागत्वं, तत्र लीनं मनो मम ॥ ११ ॥

नानानामानि संकल्प्य, विवदन्तां विचक्षणाः ।
मन्दमेधास्त्वहं नाथ ! नीरागत्वे तव स्थितः ॥ १२ ॥

विकल्पकल्पनालोलकल्लोलैर्नाथ ! रक्ष मे ।
धूयमानं मनःपोतं, यत्तरामि भवाम्बुधिम् ॥ १३ ॥

वपुः शस्तं प्रसन्ना दृग्, जन्तुरक्षाकरं वचः ।
अतस्त्वयि कथं नाथ !, सतां न रमते मनः ? ॥ १४ ॥

भ्रमन्तु भावाः प्रस्तावादितरे तारका इव ।
सर्वज्ञ ! तव तत्त्वाद्रौ, ध्रुवीयति मनस्तु मे ॥ १५ ॥

अलं परिग्रहै रम्यैरपि क्लेशकरैः प्रभो ! ।
सदानन्दमयं देहि, भावदेव ! प्रियं पदम् ॥ १६ ॥

---

*श्री अष्टविधकर्म स्वरूपम् ।

इह प्रकृत्या स्वच्छोऽपि, जीवः कर्ममलावृतः ।
लभते विविधं दुःखं, भ्राम्यन् गतिचतुष्टये ॥ १ ॥

तच्च कर्माऽष्टधा ज्ञानदर्शनावरणे तथा ।
मोहनीयं वेद्यमायुर्नामगोत्राऽन्तरायकम् ॥ २ ॥

मतिश्रुतावधिमनःपर्यायं केवलात्मकम् ।
ज्ञानं पञ्चविधं तस्याऽऽवरणं चापि पञ्चधा ॥ ३ ॥

---

* श्री लोकचन्द्राख्यसूरि-देशनायाम्,

अचक्षु-श्चक्षु-रवधि-केवलं दर्शनावृति ।
निद्रा पञ्चेति नवधा, दर्शनावरणं भवेत् ॥ ४ ॥

कषायाः षोडशभिदास्त्रिके मिथ्यात्व-वेदयोः ।
हास्यादिषट्कं मोहः स्यादऽष्टाविंशतिनिर्मितः ॥ ५ ॥

सुखे दुःखे द्विधा वेद्यमायुः कर्म चतुर्विधम् ।
तिर्यग्-नारक-गीर्वाण--मनुष्यगतिभेदतः ॥ ६ ॥

अप्यनेकविधं नाम, शुभाशुभविभेदतः ।
द्विविधं गोत्रमप्युच्चै-र्नीचैर्भेदाद् द्विधा भवेत् ॥ ७ ॥

दान-लाभयोर्वीर्यस्य, तथा भोगोपभोगयोः ।
प्रत्यूहकरणात् पञ्चविधं कर्मान्तरायकम् ॥ ८ ॥

प्रतिकूलतया द्वेषादन्तरायादपह्नवात् ।
ज्ञान-दर्शनयोर्जीवो, बध्नात्यावरणद्वयम् ॥ ९ ॥

अनुकम्पा-व्रतोद्योग--गुरुभक्ति--क्षमादिभिः ।
सुवेद्यं बध्यते कर्म, दुःखवेद्यं तथेतरैः ॥ १० ॥

सर्वज्ञगुरुसङ्घादौ, प्रत्यनीकतया भृशम् ।
दर्शनमोहनीयं स्यादनन्तभवकारकम् ॥ ११ ॥

राग--द्वेष--महामोहयुतस्तीव्रकषायभृत् ।
देश--सर्वचरित्राख्यमोहनीयस्य बन्धकः ॥ १२ ॥

मिथ्यादृष्टिः कुशीलश्च, महारम्भपरिग्रहः ।
पापः क्रूरपरिणामो, नारकायुर्निबन्धकः ॥ १३ ॥

उन्मार्गदेशको मार्गनाशको बहुमायिकः ।
शठवृत्तिः सशल्यश्च, तिर्यग्योन्यायुरर्जयेत् ॥ १४ ॥

प्रकृत्याऽल्पकषायो यः, शील--संयमवर्जितः ।
दानशीलो मनुष्यायुर्गुणैर्बध्नाति मध्यमैः ॥ १५ ॥

अकामनिर्जराबालतपोऽणुव्रतसुव्रतैः ।
जीवो बध्नाति देवायुः सम्यग्दृष्टिश्च यो भवेत् ॥ १६ ॥

मनोवचनकायेषु, वक्रो गौरवलम्पटः ।
अशुभं नाम बध्नाति, शुभं तदितरैः पुनः ॥ १७ ॥

गुणैषी निर्मदो भक्तो, ह्यर्हदाद्याऽऽगमप्रियः ।
उच्चैर्गोत्रं निबध्नाति, नीचैस्तु तद्विपर्ययात् ॥ १८ ॥

हिंसाद्यभिरतो मोक्षजिनपूजादिविघ्नकृत् ।
अर्जयत्यन्तरायाख्यं, कर्माभीष्टार्थबाधकम् ॥ १९ ॥

कोटाकोट्यः सागराणां, मोहनीस्य सप्ततिः ।
चतुर्णां ताः पुनस्त्रिंशद्, विंशतिर्नाम--गोत्रयोः ॥ २० ॥

आयुषस्तु त्रयस्त्रिंशत्, सागरा एव केवलाः ।
उत्कृष्टा स्थितिरित्येवमष्टानामपि कर्मणाम् ॥ २१ ॥

जघन्या सा तु वेद्यस्य, मुहूर्ता द्वादश स्मृताः ।
नाम्नो गोत्रस्य चाष्टान्तर्मुहूर्त्तं शेषकर्मणाम् ॥ २२ ॥

यथाप्रवृत्तिकरणात्, कर्माण्यात्माऽखिलान्यपि ।
अस्यैककोटाकोट्यन्तःस्थितीनि कुरुते सदा ॥ २३ ॥

अपूर्वकरणात् तेषां, तदा ग्रन्थिं भिनत्त्यसौ ।
प्राप्यानिवृत्तिकरणं, सम्यक्त्वं लभते ततः ॥ २४ ॥

तेन प्राप्यामृतेनेव, सच्चैतन्यं सुखीभवेत् ।
लब्धाऽऽस्वाद इवाधत्ते, जिनधर्मे मनः शनैः ॥ २५ ॥

गृहस्थ--यतिधर्मं च, प्रवृद्धा प्राप्नुवन्नथ ।
धौतकर्ममलस्तेन, लभते परमं पदम् ॥ २६ ॥

---

*श्री पार्श्वनाथ जिनस्तवः

एकः पुरुषसिंहस्त्वं, मोहमत्तेभनिग्रहात् ।
इतीव विदधे नाथ ! सिंहासनमिदं सुरैः ॥ १ ॥

राग–द्वेषमहाशत्रु–जयोत्थयशसी इव ।
चकास्तश्चामरे शुभ्रे, पक्षयोरुभयोस्तव ॥ २ ॥

---

* श्री अश्वसेननृपतिःस्तौति,

ज्ञानदर्शनचारित्रराज्यं त्वय्येकतां गतम् ।
अतस्तेषामिवैषा ते, मूर्ध्नि च्छत्रत्रयी स्थिता ॥ ३ ॥

चतुर्धा दिशतो धर्मं, चतुर्मुख ! तव ध्वनिः ।
दिव्यश्चतुर्दिशं याति, कषायानिव धर्षितुम् ॥ ४ ॥

मन्दरादीनि पुष्पाणि, पञ्चधा देशनाभुवि ।
किरन्ति तव पञ्चाक्षजयतोषादिवामराः ॥ ५ ॥

शाखाशिखरमूलैः षड्दिग्गतैः शंसतीव ते ।
षण्णां जीवनिकायानां, रक्षां ङ्किकिल्लिरुल्लसन् ॥ ६ ॥

दग्धसप्तभयैधस्त्वात्, सप्तार्चिः सममप्यदः ।
धत्ते भामण्डलं नाथ ! त्वत्सङ्गादिव शैत्यताम् ॥ ७ ॥

भूत्वा दुन्दुभिरप्युच्चैर्ध्वनन्नष्टासु दिक्ष्वसौ ।
अष्टकर्मरिपुव्रातविजयं शंसतीव ते ॥ ८ ॥

प्रातिहार्यश्रियं मूर्तामन्तरङ्गां गुणश्रियम् ।
इत्थं दृष्ट्वा मनो नाथ ! कस्य न स्यात् त्वयि स्थिरम् ? ॥९॥

*श्री षड्विधा अन्तिमाऽऽराधना।

अहो ! महानुभाव ! त्वमधुनाऽवहितो भवः ।
इयं सा धीर ! वेला ते, सुभटत्वस्य सम्प्रति ॥ १ ॥

खेदं मनसि मा कार्षीर्मनागपि तवैव यत् ।
निजकर्मपरीणामोऽपराध्यति न चाऽपरः ॥ २ ॥

यद्येन विहितं कर्म, भवेऽन्यस्मिन्निहाऽपि वा ।
वेदितव्यं हि तत्तेन, निमित्तं हि परो भवेत् ॥ ३ ॥

अतोऽधिसह तत् सम्यग्, यदि द्वेक्ष्यधुना परम् ।
अथाऽपि तस्य नो किञ्चित्, परलोकस्तु हार्यते ॥ ४ ॥

गृहाण धर्मपाथेयं, कायेन मनसा गिरा ।
यत् कृतं दुष्कृतं किञ्चित्, तत् सर्वं गर्ह सम्प्रति ॥ ५ ॥

यश्च मित्रममित्रो वा, स्वजनोऽरिजनोपि वा ।
तं क्षमयस्व तस्मै च, क्षमस्व त्वमपि स्फुटम् ॥ ६ ॥

तिर्यक्त्वे सति तिर्यञ्चो, नारकत्वे च नारकाः ।
अमरा अमरत्वे च, मानुषत्वे च मानुषाः ॥ ७ ॥

---

* महासती मदनरेखया स्वभर्तृयुगबाहोः अन्त्यकाले कारापिता निर्यामणा.

ये त्वया स्थापिता दुःखे, सर्वांस्तान् क्षमयाऽधुना ।
क्षाम्यस्व त्वमपि तेषां, मैत्रीभावमुपागतः ॥ ८ ॥

जीवितं यौवनं लक्ष्मी, रूपं प्रियसमागमः ।
चलं सर्वमिदं वात्यानर्तिताऽब्धितरङ्गवत् ॥ ९ ॥

व्याधि-जन्म-जरा-मृत्यु—ग्रस्तानां प्राणिनामिह ।
विना जिनोदितं धर्मं, शरणं कोऽपि नाऽपरः ॥ १० ॥

सर्वेऽपि जीवाः स्वजना, जाताः परजनाश्च ते ।
विदधीत प्रतिबन्धं, तेषु को हि मनागपि ? ॥ ११ ॥

एक उत्पद्यते जन्तुरेक एव विपद्यते ।
सुखान्यनुभवत्येको दुःखान्यपि स एव हि ॥ १२ ॥

अन्यद् वपुरिदं यावदन्यद् धान्य-धनादिकम् ।
बन्धवोऽन्ये च जीवोऽन्यो, वृथा मुह्यति बालिशः ॥१३॥

वसा-रुधिर-मांसा-ऽस्थि-यकृद्—विण्-मूत्रपूरिते ।
वपुष्यशुचिनिलये, मूर्च्छां कुर्वीत कः सुधी ? ॥ १४ ॥

अवक्रयाऽऽत्तवेश्मेव, मोक्तव्यमचिरादपि ।
लालितं पालितं वाऽपि, विनश्वरमिदं वपुः ॥ १५ ॥

धीरेण कातरेणाऽपि, मर्तव्यं खलु देहिना ।
तन्म्रियेत तथा धीमान्न म्रियेत यथा पुनः ॥ १६ ॥

अर्हतः शरणं सिद्धान्, शरणं शरणं मुनीन् ।
उदीरितं केवलिभिर्धर्मं शरणमाश्रय ॥ १७ ॥

जिनधर्मो मम माता, गुरुस्तातोऽथ सोदराः ।
साधवः साधर्मिकाश्च, बन्धवस्त्विवति चिन्तय ॥ १८ ॥

जीवघाता–नृता–दत्त-मैथुना–रम्भवर्जनम् ।
त्रिविधं त्रिविधेनाऽपि, प्रतिपद्यस्व भावतः ॥ १९ ॥

अष्टादशानां त्वं पापस्थानकानां प्रतिक्रमम् ।
कुरुष्वाऽनुसर स्वान्ते, परमेष्ठिनमस्क्रियाम् ॥ २० ॥

ऋषभादींस्तीर्थकरान्नमस्य निखिलानपि ।
भरतैरावतविदेहाऽर्हतोऽपि नमस्कुरु ॥ २१ ॥

तीर्थकृद्भ्यो नमस्कारो, देहभाजां भवच्छिदे ।
भवति क्रियमाणः सन्, बोधिलाभाय चोच्चकैः ॥ २२ ॥

सिद्धेभ्यश्च नमस्कारो, भगवद्भ्यो विधीयताम् ।
कर्मैधोऽदाहि यैर्ध्यानाग्निना भवसहस्रजम् ॥ २३ ॥

आचार्येभ्यः पञ्चविधाचारेभ्यश्च नमस्कुरु ।
यैर्धार्यते प्रवचनं, भवच्छेदसदोद्यतैः ॥ २४ ॥

श्रुतं बिभ्रति ये सर्वं, शिष्येभ्यो व्याहरन्ति च ।
तेभ्यो नम महात्मभ्य, उपाध्यायेभ्य उच्चकैः ॥ २५ ॥

शीलव्रतसनाथेभ्यः, साधुभ्यश्च नमस्कुरु ।
क्षमामण्डलगाः सिद्धिविद्यां संसाधयन्ति ये ॥ २६ ॥

इत्थं पञ्चनमस्कारसमं यज्जीवितं व्रजेत् ।
न याति यद्यसौ मोक्षं, ध्रुवं वैमानिको भवेत् ॥ २७ ॥

सावद्यं योगमुपधिं, बाह्यं चाऽभ्यन्तरं तथा ।
यावज्जीवं त्रिविधेन, त्रिविधं व्युत्सृजाऽधुना ॥ २८ ॥

चतुर्विधाहारमपि, यावज्जीवं परित्यज ।
उच्छ्वासे चरमे देहमपि, व्युत्सृज सत्तम ! ॥ २९ ॥

धन--स्वजन--गेहादौ, ममत्वं मुञ्च कोविद ! ।
सर्वं विघटते प्रान्ते, धर्म एकस्तु निश्चलः ॥ ३० ॥

दुष्कर्मगर्हणां जन्तुक्षामणां भावनामथ ।
चतुः शरणं च नमस्कारश्चाऽनशनं तथा ॥ ३१ ॥

इत्थमाराधनां षोढा, विधाप्य दयितं निजम् ।
पुनर्मदनरेखैवं, धीरयामास धीरधीः ॥ ३२ ॥

विभाव्यैतद् महाभाग ! विचिन्त्य नरकव्यथाम् ।
सर्वत्राऽप्रतिबद्धः सन्नेतद्दुःखं सह क्षणम् ॥ ३३ ॥

नरत्वं जिनधर्मादिसामग्री दुर्लभा पुनः ।
समचित्तैः क्षणं भूत्वा, तदस्या गृह्यतां फलम् ॥ ३४ ॥

---

*श्रीपार्श्वनाथ जिन स्तवः

जय त्रिभुवनोत्तंस ! पार्श्वनाथजिनेश्वर !
सुराऽसुरनत ! स्वामिन्नमेयमहिमानिधे !		॥ १ ॥

तव निध्यानसद्ध्यानसिद्धयोगजुषां जिन ! ।
व्याधिराधिरिवाऽसत्तिमियर्ति न कदाचन		॥ २ ॥

तव शान्तवपुःकान्तिनीरपूरप्लुतात्मनाम् ।
दुष्टोऽपि दहनोऽनिष्टं, द्वेषो वा कर्तुमक्षमः		॥ ३ ॥

आस्तामन्यजलोल्लङ्घवार्त्ता धीरधियः प्रभो ! ।
त्वामवाप्य सदाधारं, तरन्ति भवसागरम्		॥ ४ ॥

ध्याातत्वन्नाममन्त्राणां, कथमाशीविषा भिये ? ।
नेष्टे दृष्टिविषोऽप्येषां, नाथ ! मिथ्यात्वपन्नगः		॥ ५ ॥

यान्त्यभीष्टं सधन्वासित्वत्पादशरणाः पदम् ।
चौरैरक्षैरिवाऽध्वस्ताः, क्रान्त्वा भवमिवाऽटवीम् ॥ ६ ॥

प्रभोः फणिमणिज्योतिः,प्लुष्टाऽन्तर्वैरिभूरुहाम् ।
तत्पल्लवनिभाः पुंसां, अन्ये सन्त्येव नाऽरयः		॥ ७ ॥

---

* श्री बन्धुदत्तसन्दृब्धः,

सनाथानां त्वया नाथ !, श्वापदा विपदे कुतः ? ।
तेषां कर्माष्टपाद्मोहशरभः करभायते ॥ ८ ॥

अत्राऽमुत्राऽपि नो तेषां, दोषदौर्गत्यजा विपत् ।
भवन्तं ये सदानन्दश्रेयोनिधिमधिश्रिताः ॥ ९ ॥

रोगा–ऽनल-जल–व्याल–चौरा–ऽरि–श्वापदा–ऽऽपदः ।
बहिरन्तरपि स्वामिन्न भिये त्वयि वीक्षिते ॥ १० ॥

तव स्तवनवज्राङ्गीकृतरक्षाः सदा प्रभो ! ।
यान्ति दुर्गमपि श्रेयो, भावदेवमुनिस्तुत ! ॥ ११ ॥

---

*श्री धर्माराधन-शिक्षा

सर्वत्रौचित्यवार्तित्वमुपेक्षा परदूषणे ।
परेणात्ते गुणे दोषे, क्षमायां धर्मसंग्रहः ॥ १ ॥

औचित्याच्चक्षुषि न्यस्तं, श्रिये कज्जलमप्यहो ! ।
अनौचित्येन पादस्थं न कुण्डलमपीष्यते ॥ २ ॥

विमृश्या ऽऽय–व्ययं धर्मकार्यं कुर्यात् तथा बुधः ।
निश्चय–व्यवहाराभ्यां, यथा बहुगुणं भवेत् ॥ ३ ॥

---

* कीर्तिधरगुरुणा विजयराजर्षिमुद्दिश्य दत्ता,

केवलं व्यवहारोऽन्तं, नैति नद्योघगामिवत् ।
सदोत्सर्गोऽप्यगच्छेदाद्, ऋजुगामीव नो मतः ॥ ४ ॥

यथैवाऽछिन्दता वृक्षं, गृह्यते तस्य तत् फलम् ।
व्यवहारमनुल्लङ्घ्य, ध्यातव्यो निश्चयस्तथा ॥ ५ ॥

निश्चयस्तत्त्वसारोऽपि, व्यवहारेण निर्वहेत् ।
सकलस्याऽपि देवस्य, रक्षा प्राहरिकैर्भवेत् ॥ ६ ॥

निम्नोन्नतादि वैषम्यं, विदित्वा सर्ववस्तुषु ।
मध्याङ्कव्यवहारेण, सूत्रधारः प्रवर्तते ॥ ७ ॥

आत्मोत्कर्ष–परद्वेष–परे प्रायः कलौ जने ।
प्राप्य तत्त्वामृतं धीरः ,कलिं कृत्वा न हारयेत् ॥ ८ ॥

जिनेन निगृहीता ये, रागद्वेषादयो हठात् ।
तान् ये पुष्णन्त्यसौ, तेषां कथं नाथः प्रसीदति ? ॥ ९ ॥

अज्ञानाद् दृष्टिबन्धेन, पदबन्धेन गेहिनः ।
रुध्यन्ते ते पुनः शोच्या, ये रुद्धा बन्धनं विना ॥ १० ॥

दूरेऽस्तु परदोषस्याऽऽदानं स्वपरतापकम् ।
धत्ते तत्स्पर्शमात्रेऽपि, हृद् वाग् मालिन्यमुल्बणम् ॥ ११ ॥

सन्तो गुणप्रियास्तेन, परेणात्ते गुणे भृशम् ।
हृष्टाः, नीचास्तु दूयन्ते, येन ते दोषवत्सलाः ॥ १२ ॥

कृतप्रतिकृता वृद्धिः स्यात् सम्बन्धविरोधयोः ।
परोक्षं तेन नो धत्ते, योगी लाभनकोपमम् ॥ १३ ॥

महतां दूषणोद्धारादुपकारी खलः खलु ।
मुधा निदायकं सस्यक्षेत्रे, को नाऽभिनन्दति ? ॥ १४ ॥

अर्थमिच्छन्ति सन्तोऽपि, किन्त्वनौपाधिकत्वतः ।
स्वगुणख्यापनान्मध्याः, नीचास्तु परदूषणात् ॥ १५ ॥

आस्तां स्वात्ताऽऽतपत्राभं, स्वगुणोच्चारणं स्वयम् ।
अन्येनाऽपि गुणे ह्यात्ते, साधुर्नम्रो ह्रिया भवेत् ॥ १६ ॥

दूषयित्वाऽन्यवस्तूनि, गुणारोपं स्ववस्तुनः ।
वणिग्धर्मेऽपि शौचात्मा, न कुर्यात् किं पुनर्यतिः ? ॥ १७ ॥

उद्धर्तुं नैव शक्यन्ते, सर्वतो भुवि कण्टकाः ।
स्वयं तु शक्यते मोक्तुं, पादो निष्कण्टकक्षितौ ॥ १८ ॥

रक्ता देह–यशो–धर्मे, पत्र पुष्प–फलप्रभे ।
तदा त्वचिरनित्यस्थे, स्वल्पधी–मध्यमो–त्तमाः ॥ १९ ॥

चक्षुः–श्रवणवैकल्यात् पापानां मोहनिद्रया ।
दिवाऽपि रजनी साऽपि, धर्मिणां दिवसायते ॥ २० ॥

कलिकालकुवातेऽत्र, वाति यस्य विनश्यति ।
न सस्यं, शस्यते लोके, स एव पृथुभाग्यभूः ॥ २१ ॥

रजःक्रीडापरे लोके, धूलिपर्वसमे कलौ ।
तद्वाक्यतिलकं मत्त्वा, रक्षत्यात्मानमात्मवित् ॥ २२ ॥

सुषमत्वात् सुखोत्तारास्तता अपि कृतादयः ।
दुस्तरो विषमावर्त्तः, स्वल्पोऽपि हि कलिः पुनः ॥ २३ ॥

पुरुषार्थद्विषं ज्ञात्वा, प्रकृतिं स्वार्थतत्पराम् ।
धूर्तमैत्र्या ततः स्वार्थं, यः करोति स चेतनः ॥ २४ ॥

अजीर्णं तपसः क्रोधो, ज्ञानाजीर्णमहंकृतिः ।
परतप्तिः क्रियाजीर्णं, जित्वा त्रीन् निर्वृतो भव ॥ २५ ॥

सद्यः प्रीतिकरं लोके, वचो वाच्यं हितं मतम् ।
मूर्खः स्वमुखलालाभिरेव लूतेव बध्यते ॥ २६ ॥

सामकः कायिको दोषः, प्रायोऽत्यर्थस्तु वाचिकः ।
यतः पश्चादवस्थायि, व्यापकं च वचो जने ॥ २७ ॥

परार्थं व्यापयन् जीवो, रवं कान्दविकायते ।
न तु स्थूलोपयोगोऽपि, यस्य कः स्यात् ततोऽधमः ?॥ २८ ॥

तुच्छा देहस्य सौन्दर्याद्, रज्यन्ते मध्यमा गिराम् ।
चित्तस्य तूत्तमा जीवे, सुदुर्लभं पुनस्त्रयम् ॥ २९ ॥

वीक्ष्य बाह्यान्नसंहर्षात्, खेदितव्यं जनार्जने ।
रज्येत् त्वन्तर्मुखीभूय, लक्ष्यं भित्त्वात्मपार्थिवः ॥ ३० ॥

शमसर्वस्वमादाय, जितो मोहमहारिणा ।
धत्ते यस्तज्जयेऽमर्षं, स योग्यो मुक्तिसम्पदः ॥ ३१ ॥

यदि शत्रुजये वाञ्छा, तदात्मानं विनिर्जय ।
अयमात्मा जितो येन, तेन सर्वे द्विषो जिताः ॥ ३२ ॥

बहिर्मुक्तोऽप्यमुक्तोऽन्तर्बद्धपक्षीव वल्गितः ।
निस्तुषोऽपि तिलस्तापकरोऽन्तःस्नेहधारणात् ॥ ३३ ॥

एकत्र वसतां यस्य वाक्–काय–मनसां भवेत् ।
परस्परं पृथग्भावः, कुतः तस्यात्मनः शिवम् ? ॥ ३४ ॥

एकान्ते मुखरोधेन, निर्लम्पटमतेः सतः ।
क्षणाद् मोहज्वरे क्षीणे, भोगो भूरितरो भवेत् ॥ ३५ ॥

यदाऽरिष्टकुलादन्यं, स्वं विदित्वा तदुज्झति ।
तदा व्यक्तगुणो जीवः, श्लाघ्यः स्यात् परपृष्टवत् ॥ ३६ ॥

मध्येछाद्यगृहं बद्धभूमिकस्याऽतिभीर्यथा ।
प्रदीपेन तथा लोक–मध्ये साधोरपि स्फुटम् ॥ ३७ ॥

सदोषः पादधानीव प्रमादीवाऽङ्गरक्षकः ।
धर्मेऽशस्यमुनिर्बाढं न ग्राह्यस्तेन तं त्यजेत् ॥ ३८ ॥

यतित्वं यः समादाय, विरुद्धं चेष्टते कुधीः ।
आमपात्रमिव न्यायध्वस्तं कस्तं न निन्दति ? ॥ ३९ ॥

पण्डितेन मनो लक्ष्ये, शिक्षणीयं मुहुर्मुहुः ।
शैक्षवद् वञ्चयित्वैनं, भवक्रीडारसं व्रजेत् ॥ ४० ॥

घटी निरवधानस्य, गणकस्येव मज्जति ।
युञ्ज्यात् तेन मनो लक्ष्ये, धन्वीवाऽभ्यासतः शरम् ॥४१ ॥

धीरः सचेतनो मौनी, यो मार्गे यात्यसङ्गतः ।
बलिष्ठैरपि मोहाद्यैः, स शिवं यात्यगञ्जितः ॥ ४२ ॥

अज्ञानाज्जायते दुःखं, सज्ज्ञानाच्च सुखं पुनः ।
अभ्यस्यं तत् तथा तेन, स्वात्मा ज्ञानमयो भवेत् ॥ ४३ ॥

अल्पज्ञानेन नो शान्ति, याति दृप्तात्मनां मनः ।
स्तोकवृष्ट्या यतस्तप्तभूमिरूष्मायतेतराम् ॥ ४४ ॥

बह्वासङ्गेन जीवस्याऽत्यासन्ना अपि पापिनः ।
ज्ञातास्तेन स्वयं यान्ति, दोषा ह्रीता इव ध्रुवम् ॥ ४५ ॥

विज्ञातभवतत्त्वस्य, दुःखं शोकेऽपि नो भवेत् ।
ताम्रं स्वर्णं विदित्वा यो, गृह्णीते तस्य कः क्लमः ? ॥४६॥

पङ्गुरूपं नृणां भाग्यं, व्यवसायोऽन्धसन्निभः ।
यथा सिद्धिस्तयोर्योगे, तथा ज्ञान-चरित्रयोः ॥ ४७ ॥

मैत्री-प्रमोद-कारुण्य–माध्यस्थाख्या महागुणाः ।
युक्तस्तैर्लभते मुक्तिं, जीवोऽनन्तचतुष्टयम् ॥ ४८ ॥

मैत्री परहिते चिन्ता, परार्तिच्छेदधीः कृपा ।
मुदिता सद्गुणे तुष्टिर्माध्यस्थं पाप्युपेक्षणम् ॥ ४९ ॥

क्षिप्तोऽपि लघुकर्माधः, स्यादुच्चैस्तुम्बवज्जले ।
अश्मवद् गुरुकर्मा तु, नीतोऽप्यूर्ध्वमधो व्रजेत् ॥ ५० ॥

निर्माय स्वभवं चैत्यं, आदिमध्यान्तसुन्दरम् ।
निर्वाहकलशं कोऽप्यारोप्य, कीर्तिध्वजां नयेत् ॥ ५१ ॥

श्री हृदयप्रदीपषट्त्रिंशिका

शब्दादिपञ्चविषयेषु विचेतनेषु,
योऽन्तर्गतो हृदि विवेककलां व्यनक्ति ।
यस्माद् भवान्तरगतान्यपि चेष्टितानि,
प्रादुर्भवन्त्यनुभवं तमिमं भजेथाः॥ १ ॥

जानन्ति केचिन्नतु कर्तुमीशाः, कर्तुं क्षमा ये न च ते विदन्ति ।
जानन्ति तत्त्वं प्रभवन्ति कर्त्तुं, ते केऽपि लोके विरला भवन्ति॥२

सम्यग् विरक्तिर्ननु यस्य चित्ते, सम्यग् गुरुर्यस्य च तत्त्ववेत्ता ।
सदानुभूत्या दृढनिश्चयो यः, तस्यैव सिद्धिर्न हि चापरस्य ॥ ३ ॥

विग्रहं कृमिनिकायसङ्कुलं, दुःखदं हृदि विवेचयन्ति ये।
गुप्तिबन्धमिव चेतनं हि ते, मोचयन्ति तनुयन्त्रयन्त्रितम् ॥ ४ ॥

भोगार्थमेतद् भविनां शरीरम्, ज्ञानार्थमेतत् किल योगिनां वै।
जाता विषं चेद्विषया हि सम्यग्, ज्ञानात्ततः किं कुणपस्य पुष्ट्या?
त्वङ्मांसमेदोऽस्थिपुरीषमूत्रपूर्णेऽनुरागः कुणपे कथं ते?।
द्रष्टा च वक्ता च विवेकरूपस्त्वमेव साक्षात् किमु मुह्यसीत्थम् ॥ ६ ॥

धनं न केषां निधनं गतं वै, दरिद्रिणः के धनिनो न दृष्टाः।
दुखैकहेतुनि धनेऽतितृष्णां, त्यक्त्वा सुखी स्यादिति मे विचारः ॥७॥

संसारदुःखान्न परोऽस्ति रोगः, सम्यग्विचारात् परमौषधं न।
तद्रोगदुःखस्य विनाशनाय, सच्छास्त्रतोयं क्रियते विचारः ॥ ८ ॥

अनित्यताया यदि चेत् प्रतीतिस्तत्त्वस्य निष्ठा च गुरुप्रसादात्।
सुखी हि सर्वत्र जने वने च, नो चेद्वने चाथ जनेषु दुःखी ॥९॥

मोहान्धकारे भ्रमतीह तावत्, संसारदुःखैश्च कदर्थ्यमानः।
यावद्विवेकार्कमहोदयेन, यथास्थितं पश्यति नात्मरूपम् ॥ १० ॥

अर्थो ह्यनर्थो बहुधा मतोऽयम्, स्त्रीणां चरित्राणि शबोपमानि।
विषेण तुल्या विषयाश्च तेषां, येषां हृदि स्वात्मलयानुभूतिः ॥११॥

कार्यं च किं ते परदोषदृष्ट्या, कार्यं च किं ते परचिन्तया च।
वृथा कथं खिद्यसि बालबुद्धे!, कुरू स्वकार्यं त्यज सर्वमन्यत् ॥१२॥

यस्मिन् कृते कर्मणि सौख्यलेशो, दुःखानुबंधस्य तथास्ति नान्तः ।
मनोऽभितापो मरणं हि यावत्, मूर्खोऽपि कुर्यात् खलु तन्न कर्म।१३।

यदर्जितं वै वयसाऽखिलेन, ध्यानं तपो ज्ञानमुखं च सत्यम् ।
क्षणेन सर्वं प्रदहत्यहो तत्, कामो बली प्राप्य चलं(छलं?)यतीनाम्१४

बलादसौ मोहरिपुर्जनानां, ज्ञानं विवेकं च निराकरोति ।
मोहाभिभूतं हि जगद्विनष्टं, तत्त्वावबोधादपयाति मोहः ॥ १५ ॥

सर्वत्र सर्वस्य सदा प्रवृत्तिर्दुःखस्य नाशाय सुखस्य हेतोः ।
तथापि दुखं न विनाशमेति, सुखं न कस्यापि भजेत् स्थिरत्वम्॥१६॥

यत् कृत्रिमं वैषयिकादि सौख्यम्, भ्रमन् भवे को न लभेत मर्त्यः ।
सर्वेषु तच्चाधममध्यमेषु, यद्दृश्यते तत्र किमद्भुतं च ॥ १७ ॥

क्षुधातृषाकामविकाररोषहेतुश्च तद् भेषजवद्वदन्ति ।
तदस्वतन्त्रं क्षणिकं प्रयासकृत्, यतीश्वरा दूरतरं त्यजन्ति ॥ १८ ॥

गृहीतलिङ्गस्य च चेद्धनाशा, गृहीतलिङ्गो विषयाभिलाषी ।
गृहीतलिङ्गो रसलोलुपश्चेद्, विडम्बनं नास्ति ततोऽधिकं हि ॥१९॥

ये लुब्धचित्ता विषयार्थभोगे, बहिर्विरागा हृदि बद्धरागाः ।
ते दाम्भिका वेषधराश्च धूर्ताः, मनांसि लोकस्य तु रञ्जयन्ति ॥२०॥

मुग्धश्च लोकोऽपि हि यत्र मार्गे, निवेशितस्तत्र रतिं करोति ।
धूर्तस्य वाक्यैः परिमोहितानां, केषां न चित्तं भ्रमतीहलोके ॥२१॥

ये निःस्पृहास्त्यक्तसमस्तरागास्तत्त्वैकनिष्ठा गलिताभिमानाः ।
सन्तोषपोषैकविलीनवाञ्छास्ते, रञ्जयन्ति स्वमनो न लोकम् ॥२२॥

तावद्विवादी जनरञ्जकश्च, यावन्न चैवात्मरसे सुखज्ञः ।
चिन्तामणिं प्राप्य वरं हि लोके, जने जने कः कथयन् प्रयाति ? ॥२३॥

षण्णां विरोधोऽपि च दर्शनानाम्, तथैव तेषां शतशश्च भेदाः ।
नानापथे सर्वजनः प्रवृत्तः, को लोकमाराधयितुं समर्थः ॥ २४ ॥

तदेव राज्यं हि धनं तदेव, तपस्तदेवेह कला च सैव ।
स्वस्थे भवेच्छीलताऽऽशये चेन्नो चेद्वृथा सर्वमिदं हि मन्ये ॥२५॥

रुष्टैर्जनैः किं यदि चित्तशान्तिस्तुष्टैर्जनैः किं यदि चित्ततापः ।
प्रीणाति नो नैव दुनोति चान्यान्, स्वस्थः सदोदासपरो हि योगी२६

एकःपापात् पतति नरके, याति पुण्यात् स्वरेकः,
पुण्यापुण्यप्रचयविगमात्, मोक्षमेकः प्रयाति ।
संगान्नूनं न भवति सुखं, न द्वितीयेन कार्यम्,
तस्मादेको विचरति सदानन्दसौख्येन पूर्णः ॥ २७ ॥

त्रैलोक्यमेतद् बहुभिर्जितं यैर्मनोजये तेऽपि यतो न शक्ताः ।
मनोजयस्यात्र पुरो हि तस्मात्, तृणं त्रिलोकीविजयं वदन्ति॥२८॥

मनोलयान्नास्ति परो हि योगो, ज्ञानं तु तत्त्वार्थविचारणाच्च ।
समाधिसौख्यान्न परं च सौख्यम्, संसारसारं त्रयमेतदेव ॥२९॥

या सिद्धयोऽष्टावपि दुर्लभा ये, रसायनं चाञ्जनधातुवादाः ।
ध्यानानि मन्त्राश्च समाधियोगाश्चित्तेऽप्रसन्ने विषवद् भवन्ति॥३०॥

विन्दन्ति तत्त्वं न यथास्थितं वै, सङ्कल्पचिन्ताविषयाकुला ये ।
संसारदुःखैश्च कदर्थितानाम्, स्वप्नेऽपि तेषां न समाधिसौख्यम् ॥३१

श्लोको वरं परमतत्त्वपथप्रकाशी, न ग्रन्थकोटिपठनं जनरञ्जनाय।
सञ्जीवनीति वरमौषधमेकमेव, व्यर्थः श्रमप्रजननो नतु मूलभारः॥३२

तावत् सुखेच्छा विषयादिभोगे, यावन्मनः स्वास्थ्यसुखं न वेत्ति ।
लब्धे मनः स्वास्थ्यसुखैकलेशे, त्रैलोक्यराज्येऽपि न तस्य वाञ्छा॥३३

न देवराजस्य न चक्रवर्त्तिनस्तद्वै सुखं रागयुतस्य मन्ये ।
यद्वीतरागस्य मुनेः सदात्मनिष्ठस्य चित्ते स्थिरतां प्रयाति ॥ ३४ ॥

यथा यथा कार्यशताकुलं वै, कुत्रापि नो विश्रमतीह चित्तम् ।
तथा तथा तत्त्वमिदं दुरापं, हृदि स्थितं सारविचारहीनैः ॥ ३५ ॥

शमसुखरसलेशात् द्वेष्यतां संप्रयाता,
विविधविषयभोगात्यन्तवाञ्छाविशेषाः ।
परमसुखमिदं यद् भुज्यतेऽन्तःसमाधौ,
मनसि यदि तदा ते शिष्यते किं वदान्यत् ॥ ३६ ॥

गूर्जरसम्राट श्रीकुमारपालविरचितं—

साधारण जिनस्तवनम् ।

नम्राखिलाखण्डलमौलिरत्नरश्मिच्छटापल्लवितांह्रिपीठ ! ।
विध्वस्तविश्वव्यसनप्रबन्ध ! त्रिलोकबन्धो ! जयताज्जिनेन्द्र ! ॥ १ ॥

मूढोऽस्म्यहं विज्ञपयामि यत्त्वामपेतरागं भगवन् ! कृतार्थम् ।
नहि प्रभुणामुचितस्वरूपनिरूपणाय क्षमतेऽर्थिवर्गः ॥ २ ॥

मुक्तिं गतोऽपीश ! विशुद्धचित्ते गुणाधिरोपेण ममासि साक्षात् ।
भानुर्दवीयानपि दर्पणेंऽशुसङ्गान्न किं द्योतयते गृहान्तः ? ॥ ३ ॥

तवस्तवेन क्षयमङ्गभाजां भजन्ति जन्मार्जितपातकानि ।
कियच्चिरं चण्डरुचेर्मरीचिस्तोमे तमांसि स्थितिमुद्वहन्ति ॥ ४ ॥

शरण्य ! कारुण्यपरः परेषां, निहंसि मोहज्वरमाश्रितानाम् ।
मम त्वदाज्ञां वहतोऽपि मूर्ध्ना, शान्तिं न यात्येष कुतोऽपि हेतोः ।५।

भवाटवीलङ्घनसार्थवाहं, त्वामाश्रितो मुक्तिमहं यियासुः ।
कषायचौरैर्जिन ! लुप्यमानं रत्नत्रयं मे तदुपेक्षसे किम् ? ॥ ६ ॥

लब्धोऽसि स त्वं मयका महात्मा, भवाम्बुधौ बंभ्रमता कथंचित् ।
आः पापपिण्डेन नतो न भक्त्या, न पूजितो नाथ ! नतु स्तुतोऽसि ॥७॥

संसारचक्रे भ्रमयन् कुबोधदण्डेन मां कर्ममहाकुलालः ।
करोति दुःखप्रचयस्थभाण्डम्, ततः प्रभो ! रक्ष जगच्छरण्य ! ॥८॥

कदा त्वदाज्ञाकरणाप्ततत्त्वस्त्यक्त्वा ममत्वादि भवैककन्दम् ।
आत्मैकसारो निरपेक्षवृत्तिर्मोक्षेऽप्यनिच्छो भवितास्मि नाथ ! ॥९॥

तव त्रियामापतिकान्तिकान्तैर्गुणैर्नियम्यात्ममनःप्लवङ्गम् ।
कदा त्वदाज्ञाऽमृतपानलोलः, स्वामिन् ! परब्रह्मरतिं करिष्ये ॥१०॥

एतावतीं भूमिमहं त्वदंह्रिपद्मप्रसादाद्गतवानधीश ।
हठेन पापास्तदपि स्मराद्या, ही मामकार्येषु नियोजयन्ति ॥ ११ ॥

भद्रं न किं त्वय्यपि नाथ ! नाथे, सम्भाव्यते मे यदपि स्मराद्याः ।
अपाक्रियन्ते शुभभावनाभिः, पृष्ठिं न मुञ्चन्ति तथापि पापाः ॥१२॥

भवाम्बुराशौ भ्रमतः कदापि, मन्ये न मे लोचनगोचरोऽभूः ।
निस्सीमसीमन्तकनारकादिदुःखातिथित्वं कथमन्यथेश ! ॥ १३ ॥

चक्रासिचापाङ्कुशवज्रमुख्यैः, सल्लक्षणैर्लक्षितमंह्रियुग्मम् ।
नाथ ! त्वदीयं शरणं गतोऽस्मि, दुर्वारमोहादिविपक्षभीतः ॥ १४ ॥

अगण्यकारुण्य ! शरण्य ! पुण्य ! सर्वज्ञ ! निष्कन्टक ! विश्वनाथ ! ।
दीनं हताशं शरणागतं च, मां रक्ष रक्ष स्मरभिल्लभल्लेः ॥ १५ ॥

त्वया विना दुष्कृतचक्रवालं, नान्यः क्षयं नेतुमलं ममेश ! ।
किं वा विपक्षप्रतिचक्रमूलम्, चक्रं विना च्छेत्तुमलम्भविष्णुः॥१६॥

यद्देवदेवोऽसि महेश्वरोसि, बुद्धोऽसि विश्वत्रयनायकोऽसि ।
तेनान्तरङ्गारिगणाभिभूतस्तवाग्रतो रोदिमि हा सखेदम् ॥ १७ ॥

स्वामिन्नधर्मव्यसनानि हित्वा, मनः समाधौ निदधामि यावत् ।
तावत्क्रुधेवान्तरवैरिणो मामनल्पमोहान्ध्यवशं नयन्ति ॥ १८ ॥

त्वदागमाद्वेद्मि सदैव देव !, मोहादयो यन्मम वैरिणोऽमी ।
तथापि मूढस्य परात्तबुद्ध्या, तत्सन्निधौ ही न किमप्यकृत्यम् ॥१९॥

म्लेच्छैर्नृशंसैरतिराक्षसैश्च, विडम्बितोऽमीभिरनेकशोऽहम् ।
प्राप्तस्त्विदानीं भुवनैकवीर !, त्रायस्व मां यत्तव पादलीनम् ॥ २० ॥

हित्वा स्वदेहेऽपि ममत्वबुद्धिं, श्रद्धापवित्रीकृतसद्विवेकः ।
मुक्तान्यसङ्गः समशत्रुमित्रः स्वामिन् ! कदा संयममातनिष्ये ॥२१॥

त्वमेव देवो मम वीतराग, धर्मो भवद्दर्शितधर्म एव ।
इति स्वरूपं परिभाव्य तस्मान्नोपेक्षणीयो भवता स्वभृत्यः ॥ २२ ॥

जिता जिताशेषसुरासुराद्याः, कामादयः काममभी त्वयेश ! ।
त्वां प्रत्यशक्तास्तव सेवकं तु, निघ्नन्ति हि मां परुषं रुषैव ॥ २३ ॥

सामर्थ्यमेतद् भवतोऽस्ति सिद्धिं, सत्त्वानशेषानपि नेतुमीश ! ।
क्रियाविहीनं भवदंह्रिलीनम्, दीनं न किं रक्षसि मां शरण्य ? ॥२४॥

त्वत्पादपद्मद्वितयं जिनेन्द्र !, स्फुरत्यजस्रं हृदि यस्य पुंसः ।
विश्वत्रयीश्रीरपि नूनमेति तत्राश्रयार्थं सहचारिणीव ॥ २५ ॥

अहं प्रभो ! निर्गुणचक्रवर्ती, क्रूरो दुरात्मा हतकः सपाप्मा ।
ही दुःखराशौ भववारिराशौ, यस्मान्निमग्नोऽस्मि भवद्विमुक्तः॥२६॥

स्वामिन्निमग्नोऽस्मि सुधासमुद्रे, यन्नेत्रपात्रातिथिरद्य मेऽभूः ।
चिन्तामणौ स्फूर्जति पाणिपद्मे, पुंसामसाध्यो न हि कश्चिदर्थः ॥२७॥

त्वमेव संसारमहाम्बुराशौ, निमज्जतो मे जिन ! यानपात्रम् ।
त्वमेव मे श्रेष्ठसुखैकधाम, विमुक्तिरामाघटनाभिरामः ॥ २८ ॥

चिन्तामणिस्तस्य जिनेश ! पाणौ, कल्पद्रुमस्तस्य गृहाङ्गणस्थः ।
नमस्कृतो येन सदापि भक्त्या, स्तोत्रैः स्तुतो दामभिरर्चितोऽसि २९

निमील्य नेत्रे मनसः स्थिरत्वं, विधाय यावज्जिन ! चिन्तयामि ।
त्वमेव तावन्न परोऽस्ति देवो, निःशेषकर्मक्षयहेतुरत्र ॥ ३० ॥

भक्त्या स्तुता अपि परे परया परेभ्यो,
मुक्तिं जिनेन्द्र ! ददते न कथञ्चनापि ।
सिक्ताः सुधारसघटैरपि निम्बवृक्षा,
विश्राणयन्ति नहि चूतफलं कदाचित् ॥ ३१ ॥

भवजलनदिमध्यान्नाथ ! निस्तार्य कार्यः,
शिवनगरकुटुम्बी निर्गुणोऽपि त्वयाऽहम् ।

नहि गुणमगुणं वा संश्रितानां महान्तो,
निरुपमकरुणार्द्राः सर्वथा चिन्तयन्ति ॥ ३२ ॥

प्राप्तस्त्वं बहुभिः शुभैस्त्रिजगतश्चूडामणिर्देवता,
निर्वाणप्रतिभूरसावपि गुरुः श्रीहेमचंद्रप्रभुः ।
तन्नातः परमस्ति वस्तु किमपि स्वामिन् ? यदभ्यर्थये,
किन्तु त्वद्वचनादरः प्रतिभवम् स्ताद्वर्द्धमानो मम ॥ ३३ ॥

श्री लोडणपार्श्वनाथ-जिनस्तवः

प्रभुलोडणपार्श्वजिनं सुकरं, भवपापतमोभरदूरकरम् ।
सततं जनसंततिशांतिकरं, जनतार्चितसुंदरपादधरम् ॥ १ ॥

भविकाम्बुजवारविबोधकरं, नमतां नरनिर्जरदुःखहरम् ।
भवतां गुणकाननवारिभरं, भववारिधिपोतसमं सुचिरम् ॥२॥

जगतां जनसंततिजन्महरं, सकलं शिवदं सुखवारकरम् ।
यशसा किल निर्जितशीतकरं, जितमन्मथमानमनंतकरम् ॥ ३ ॥

जयकारीयशोधनधीप्रवरं, भवभीममहोदधिभीतिहरम् ।
दशनच्छवितार्जितपद्मवरं, मनुजेप्सीतकार्यविधानपरम् ॥ ४ ॥

जनकिल्बिषपादपपर्शुतरं, सुरनाथनतं जगदर्त्तिहरम् ।
घनकर्मकृशानुपयोनिकरं, विशदांऽघ्रियुगं किलपद्मवरम् ॥५॥

क्षितिमेरुमहीधरधैर्यधरं, प्रणतासुरकिन्नरदेवनरम् ।
सुकृतव्रजनिर्जरसत्शिखरं, तनुदीप्तिपरिहृतसूर्यमरम् ॥ ६ ॥

जनताम्बुजकाननसत्भ्रमरं, मदनोद्धतवारणसिंहपरम् ।
भवकर्दमनाशननीरधरं, सुयशःसुकृतैकगुणप्रकरम् ॥ ७ ॥

अवनीतलविश्रुतकीर्त्तिभरं, कमलापतिसेवितसाधुवरम् ।
जितमारमुद्गतशेषदरं, गुणनीरधिमानतदेवनरम् ॥ ८ ॥

इत्थं पार्श्वजिनोत्तमं शिवकरं भक्त्या नुतं सज्जिनं,
दुःपापाम्बुधिशोषणे घटभवं, भास्वत्कलाभाजनम् ॥
श्रीमद्वाचकभानुचंद्रचरणद्वंद्वैकसेवावशात् ।
सद्यस्कंवरऋद्धिचंद्रशिशुना सत्पद्यबंधेन वै ॥ ९ ॥

याकिनीमहत्तरासूनु आचार्य श्री हरिभद्रसूरिकृतम्

श्री जिनप्रतिमास्तोत्रम्

नमिउणं सव्वजिणे, सिद्धेसूरी तहा उवज्झाए ।
साहू अ जुगप्पवरे, वुच्छं जिणकिलहं भत्तो ॥ १ ॥

चुलसिलखसहसा, सगनवइतिवीसऊड्ढलोगंमि ।
कोडीओ सत्तलक्खा, बावत्तरि भवणवासीसु ॥ २ ॥

मेरुसु असी जिणाला, वक्खारेसु असी दसकुरुसु ।
वीसं गयदंतेसु, जयंति तीसं कुलगिरीसु ॥ ३ ॥

वेयड्ढेसु सत्तरिसयं च नंदीसरंमि बावण्णा ।
उसुआर माणुसुत्तर, कुंडल रुअगेसु चउचउरो ॥ ४ ॥

एवं सव्वग्गेणं, चउसयअडवण्ण तिरिय लोगंमि ।
वंतरजोइसमज्झे, जिणाण भवणा असंखिज्जा ॥ ५ ॥

अण्णाइं कित्तिमाइं, नगनगरपुरेसु निगमगामेसु ।
विहिणा जिणभवणाइं, भत्तीए वंदिमो ताइं ॥ ६ ॥

इअ जिणहराणनिअरं, संखेवेणं मए समक्खायं ।
भावेण भणिज्जं तं, भवविरहं कुणउ भव्वाणं ॥ ७ ॥

श्री आदिजिनस्तवः

आदिजिनं वन्दे गुणसदनं, सदनंतामलबोधं रे ।
बोधकतागुणविस्तृतकीर्तिं, कीर्तितपथमविरोधं रे ॥ १ ॥

रोधरहितविस्फुरदुपयोगं, योगं दधतमभंगं रे ।
भंगं नयव्रजपेशलवाचं, वाचंयमसुखसंगं रे ॥ २ ॥

संगतपदशुचिवचनतरंगं, रंगं जगति ददानं रे।
दानसुरद्रुममञ्जुलहृदयं, हृदयंगमगुणभानं रे ॥ ३ ॥

भानंदितसुरवरपुन्नागं, नागरमानसहंसं रे।
हंसगतिं पंचमगतिवासं, वासवविहिताशंसं रे ॥ ४ ॥

शंसंतंपदवचनमनवमं, नवमंगलदातारं रे।
तारस्वरमघघनपवमानं, मानसुभटजेतारं रे ॥ ५ ॥

इत्थं स्तुतः प्रथमतीर्थपतिः प्रमोदा–
च्छ्रीमद्यशोविजयवाचकपुंगवेन ॥
श्रीपुंडरीकगिरिराजविराजमानो।
मानोन्मुखानि वितनोतु सतां सुखानि ॥ ६ ॥

---

(२)

श्रीमरुदेवातनुजन्मानं, मानवरत्नमुदारं रे।
दारैस्सह हरिभिः कृतसेवं, सेवकजनसुखकारं रे ॥ १ ॥

कारणगंधमृतेऽपि जनानां, नानासुखदातारं रे।
तारस्वररसजितपरपुष्टं, पुष्टशमाकूपारं रे ॥ २ ॥

पारंगतमिह जन्मपयोधे, र्योधेहितगुणधीरं रे।
धीरसमूहैस्संस्तुतचरणं, चरणमहीरुहकीरं रे ॥ ३ ॥

कीरनसं यशसा जितचंद्रं, चंद्रामलगुणवासं रे।
वासवहृदयकजाहिमपादं, पादपमिवसच्छायं रे ॥ ४ ॥

सच्छायाकब्बरपुरधरणिधरणिधवमिव कामं रे ।
कामं नमत सुलक्षणनाभिं, नाभितनुजमुद्दामं रे ॥ ५ ॥

इत्थं तीर्थपतिः स्तुतः शतमखश्रेणी श्रितः श्रीनदी–
जीमूतोद्भूतभाग्यसेवधिरधिक्षिप्तःसमग्रैर्गुणैः ॥ ६ ॥

श्रीमन्नाभिनरेन्द्रवंशकमलाकेतुर्भवाम्भोनिधौ ।
सेतुःश्रीवृषभो ददातु विनयं स्वीयं सदा वांच्छितम् ॥ ७ ॥

श्री भूतवर्तमानभावि-जिनस्तवः

नमिऊण वद्धमाणं सुरनरदेविंदविहियवरमाणं ।
भरहम्मि भूयसंपइभाविजिणिंदे थुणिस्समहं ॥ १ ॥

केवलनाणी निव्वाणसायरो जिणमहायसा विमलो ।
सव्वाणुभूईसिरिहरदतो दामोयरसुतेओ ॥ २ ॥

सामिजिणो मुणिसुव्वइ सुमई सिवमइजिणोय अत्थागो ।
तह य नमेसरअनिलो जसोहरो जिणकयत्थो य ॥ ३ ॥

धम्मीसर सुद्धमई सिवकर जिण संदणो य संपइया ।
तीउस्सप्पिभरहे जिणेसरे नामओ वंदे ॥ ४ ॥

उसभं अजियं संभवमभिणंदण सुमइ पउमसुप्पासं ।
चंदप्पह सुविहिसीयल सिज्जंसवासुपुज्जं च ॥ ५ ॥

विमलमणंतं धम्मं संतिं कुंथुं अरं च मल्लिं च ।
मुणिसुव्वइ नमि नेमि पासं तह वद्धमाणं च ॥ ६ ॥
वीरजिणस्स भगवओ वोलियचुलसीवरिससहस्सेहिं ।
पउमाइचउवीसं जह हूंति जिणा तहाथुणिमो ॥ ७ ॥
पढमं च पउमनाहं सेणियजीवं जिणेसरं नमिमो ।
बीयं च सूरदेवं वंदे जीवं सुपासस्स ॥ ८ ॥
तइयं सुपासनामं उदायिजीवं पणट्ठभववासं ।
वंदे सयंपभजिणं पुट्टिलजीवं चउत्थमहं ॥ ९ ॥
सव्वाणुभूयिनामं दढाउजीवं च पंचमं वंदे ।
छट्ठं देवसुयं जिणं वंदे जीवं च कत्तीयं ॥ १० ॥
सत्तमयं उदयजिणं वंदे जीवं च संखनामस्स ।
पेढालं अट्ठमयं आणंदजीवं नमंसामि ॥ ११ ॥
पुट्टिलजिणिंद नवमं सुरकयसेवं सुनंदजीवस्स ।
सयकित्तिजिणं दसमं वंदे सयगस्स जीवंति ॥ १२ ॥
एगारसमं मुणिसुव्वयं च वंदामि देवईजीवं ।
बारसमं अममजिणं किन्हजीवं जयपईवं ॥ १३ ॥
निकसायं तेरसमं वंदे जीवं च वासुदेवस्स ।
बलदेवजियं वंदे चउदसमं निकुलायजिणं ॥ १४ ॥

सुलसाजीवं वंदे पनरसमं निम्ममत्तजिणनामं ।
रोहिणिजीवं नमिमो सोलसमं चित्तगुत्तंति ॥ १५ ॥

सत्तरसमं च वंदे रेवतीजीवं समाहिनामाणं ।
संवरमट्ठारसमं सयाणिजीवं पणिवयामि ॥ १६ ॥

दीवायणस्स जीवं जसोहर वंदिमो इगुणवीसं ।
कन्हाजिय गयतन्हं वीसइमं विजयमभिवंदे ॥ १७ ॥

इगवीसइमं नारयजीवं देवं च मल्लिनामाणं ।
देवजिणं बावीसं अम्मडजीवस्स वंदे हं ॥ १८ ॥

अमरजीवं तेवीसं अणंतविरियं जिणं वंदे ।
तह साइबुद्धिजीवं चउवीसं भद्दजिणनामं ॥ १९ ॥

इह भरहे कालत्तिअ बावत्तरिजिणवरा सुनामेहिं ।
सिरिचंदसूरिथुणिआ सुहयकरा हुंतु सयकालं ॥ २० ॥

श्री गौतमस्वामि-स्तवः

श्रीइन्द्रभूतिं वसुभूतिपुत्रं, पृथ्वीभवं गौतमगोत्ररत्नं ।
स्तुवन्ति देवासुरमानवेन्द्राः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ १ ॥

श्रीवर्द्धमानात्त्रिपदीमवाप्य, मुहूर्तमात्रेण कृतानि येन ।
अङ्गानि पूर्वाणि चतुर्दशापि, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ २ ॥

श्रीवीरनाथेन पुरा प्रणीतं, मंत्रं महानंदसुखाय यस्य ।
ध्यायंत्यमी सूरिवराः समग्राः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ ३ ॥

यस्याभिधानं मुनयोऽपि सर्वे, गृह्णन्ति भिक्षाभ्रमणस्य काले ।
मिष्टान्नपानांबरपूर्णकामाः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ ४ ॥

अष्टापदाद्रौ गगने स्वशक्त्या, ययौ जिनानां पदवंदनाय ।
निशम्य तीर्थातिशयं सुरेभ्यः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ ५ ॥

त्रिपंचसंख्याशिततापसानां, तपःकृशानामपुनर्भवाय ।
अक्षीणलब्ध्या परमान्नदाता, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ ६ ॥

सदक्षिणं भोजनमेव देयं, साधर्मिकं संघसपर्ययश्च ।
कैवल्यवस्त्रं प्रददौ मुनीनाम्, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ ७ ॥

शिवं गते भर्तरि वीरनाथे, युगप्रधानत्वमिहैव मत्वा ।
पट्टाभिषेको विदधे सुरेन्द्रैः, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ ८ ॥

त्रैलोक्यबीजं परमेष्ठिबीजं, सज्ञानबीजं जिनराजबीजं ।
यन्नाम चोक्तं विदधाति सिद्धिं, स गौतमो यच्छतु वांछितं मे ॥ ९ ॥

श्रीगौतमस्याष्टकमादरेण, प्रबोधकाले मुनिपुंगवा ये ।
पठन्ति ते सूरिपदं सदैवानंदं लभन्ते सुतरां क्रमेण ॥ १० ॥

श्री चतुर्विंशति-जिनस्तवः

सुरकिन्नरनागनरेन्द्रनतं, प्रणमामि युगादिजिनमजितं ।
संभवमभिनंदनमथसुमतिं, पद्मप्रभमुज्ज्वलधीरमतिं ॥ १ ॥

वंदे च सुपार्श्वजिनेन्द्रमहं, चंद्रप्रभमष्टकुकर्मदहं ।
सुविधिप्रभुशीतलजिनयुगलं, श्रेयांसमशंसयमतुलबलं ॥ २ ॥

प्रभुमर्चय नृपवसुपूज्यसुतं, जिनविमलमनन्तमभिज्ञनतं ।
तं धर्ममधर्मनिवारिगुणं, श्रीशान्तिमनुत्तरशान्तिगुणम् ॥३॥

कुंथुश्रीअरमल्लीजिनान्, मुनिसुव्रतनमिनेमींस्तमसिदिनान् ।
श्रीपार्श्वजिनेन्द्रमिभेन्द्रसमं, वंदे जिनवीरमभीरुतमम् ॥ ४ ॥

इति नागकिन्नरनरपुरंदरवंदितक्रमपंकजा,
निर्जितमहारिपुमोहमत्सरमानमदमकरध्वजा ।
विलसंति सततं सकलमंगलकेलिकाननसन्निभा,
सर्वे जिना मे हृदयकमले राजहंससमप्रभा ॥ ५ ॥

॥ इति स्वाध्यायदोहनग्रन्थः समाप्तः ॥

स्वाध्याय दोहन ग्रन्थस्थ परिशिष्टाणि

क्रमांक १-२-३

परिशिष्ट प्रथम—भाषाटीप्पणो

(प्रथम अध्यायना टीप्पणगत पद्योनो विशेषार्थ.)

पृष्टांक-टीप्पणांक-

+१।१, **अयत्नक्षालितमला** = વિના યત્ને સાફ થયો છે મલ જેનો.

१।२' **खिलः** = રોકાયેલો, બંધ થયેલો;

૫।३, **प्रत्याख्यानखिलाध्वनि** = (અદત્તાદાનના) પ્રત્યાખ્યાનના અત્યાર અગાઉ બંધ થયેલા માર્ગને વિષે.

૫।४, **अध्वनीनाय** = મુસાફર સમા. (જગત્પતિને નમસ્કાર,)

૬।૫, **व्रतभारककुद्मते** = વ્રતના ભારને જીળવાને વૃષભ – બળદ સમાન (આપને નમસ્કાર.)

૬।૬, **संसारसिंधुतरणकमठाय** = સંસાર સાગરને તરી જવાને કાચબા સમાન – (આપને નમસ્કાર હો.)

૬।७, **वचःसंवृत्तिशालिने** = વાણીના સંવરથી શોભતા – (આપને નમસ્કાર)

७।८, **प्ररोहाय** = (ધર્મવૃક્ષના બીજને) વાવવાને માટે (તું છે.)

+ જો કે ત્યાં પૃષ્ઠના અને ટીપ્પણના આંકડાઓ આંગ્લ લીપીમાં છે, અહિં અંકોનો ક્રમ તદનુસાર હોવા છતાંયે, બાળબોધ લીપી લીધેલ છે.

७।९, **अबोद्धॄणाम्** = નહિ સમજી શકનારાઓને (ગ્રન્થાભ્યાસ એ કેવલ ક્લેશ છે તેમ)

७।१०, **चित्रीयते हि नः** = અમોને આશ્ચર્ય કરે છે.

७।११, **नाथाम्यदः** = આ હું પ્રાર્થું છું.

८।१, **इदमुद्वेष्ट्यते** = આ (જગત) ખાલી કરાય છે.

८।२, **नाथामि नाथ ! किम्** = હે નાથ ! હું (તારી પાસે) માગું શું ?

८।३, **नानावस्कंदसंग्रामहतग्रामभुवः** = નાના પ્રકારના આક્રમણ અને યુદ્ધોથી જેઓની ગ્રામભૂમિઓ લૂંટાઇ ગઇ છે.

९।४, **करटी करटस्थलीम्** = હાથી (પોતાના) કુંભસ્થળને.

९।५, **अदभ्रबभ्रोरभ्यर्णे** = મહાન નોલીયાની પાસે (ગોળ કુંડાળું વળીને સર્પ નિર્ભય રીતિયે બેઠેલ છે.)

९।६, **अत्र तिष्ठंति** = અહિં (દેવની ધર્મદેશનાની પરિષદમાં) રહે છે.

१०।७, **धन्यानामवतंसंति** = ધન્ય પુરૂષોના (મસ્તકે) મુકુટની જેમ શોભે છે.

१०।८, **पीयूषदीधितिः सर्वजलाशयजलेष्विव** = જેમ ચન્દ્ર સર્વ સરોવરોના જલમાં એકસમાન પ્રતિબીમ્બિત થાય છે તેમ.

१०।९, **त्वां नन्ता नम्यते** = તને નમસ્કાર કરનાર, (જગતના) નમસ્કાર ઝીલે છે.

१०।१०, **छायाद्रुम इवाऽध्वनि** = જેમ ઘટાદાર વૃક્ષ, માર્ગમાં (પાન્થજનોને સર્વ સાધારણ ઉપકારી છે તેમ).

११।१, **भवारित्रस्तदेहिनाम्** = સંસાર શત્રુઓથી ત્રાસી ઉઠેલ જીવોને, (સારૂ)

૧૧।૨, **परलोकेऽप्यनिमिषीभावः** = પરલોકમાં દેવપણું.

૧૨।૩, **येऽधित्वद्भक्तिवर्मिताः** = જે લોકો તારા વિષેની ભક્તિના બખ્તરથી મજબૂત બનેલા છે.

૧૨।૪, **चंचरीकंति** = સેવાઓ—ઉપાસનાઓ કરે છે.

૧૨।૫, **लोकाग्रं मेर्वादि मनसामिव** = મનને જેમ મેરૂ દૂર નથી તેમ લોકાગ્ર—મુક્તિસ્થાન—

૧૩।૬, **जंबूफलानीव वारिदवारिभिः** = મેઘના જળથી જાંબુની જેમ. (જાંબુના ઝાડપર વરસાદનું પાણી પડતાં જાંબુઓ ખરી પડે છે.)

૧૩।૭, **नित्यप्रमद्वरः** = સદાયે અતિ પ્રમાદશીલ.

૧૩।૮, **खंजः** = પગથી પાંગલો—પંગુ.

૧૩।૯, **छत्रच्छायायमानांघ्रिच्छाय !** = છત્રની છાયા સમાન છે ચરણની છાયા જેની. (એવા હે પ્રભો !)

૧૩।૧૦, **स्वार्थायोद्याति किमहस्करः** = સૂર્ય શું પોતાને સારૂ ગતિ કરે છે કે ?

૧૪।૧, **वर्तयोऽपि हि दीपताम्** = વાટ—દીવેટ પણ દીપક બને છે. (પ્રકાશ આપે છે.)

૧૪।૨, **माद्यदिंद्रियदंतींद्राऽमदीकरणभेषजम्** = મદોન્મત્ત ઇન્દ્રિય-હાથીઓને નિર્મદ બનાવવાને સારૂ ઔષધ સમાન. (સ્વામિન્! આપનું શાસન છે.)

૧૫।૩, **शेषकर्माण्युपेक्षसे** = બાકીના અઘાતીકર્મોની ઉપેક્ષા કરે છે. તેનું કારણ કેવલ લોકોપકાર છે.

१५।४, **उदन्वंतं पक्षिराजपक्षमध्यगता इव** = ગરૂડની પાંખમાં રહેલા માનવોને સાગર લંઘવો જેમ સુકર છે તેમ.—

१५।५, **अनंतकल्याणद्रुमोल्लासनदोहदम्** = અનંત કલ્યાણરૂપ વૃક્ષને ઉલ્લસિત કરવાને સારૂ દોહદ સમાન.

१५।६, **दंतिदंताः स्फुटंति हि**=ચન્દ્રનાં કોમળપણ કિરણોથી હાથીના દાંતો ફુટે છે.

१७।७ **आदर्शप्रतिबिंबवत्** = આરિસામાં સંક્રમણપામેલા પ્રતિબિંબની જેમ.

१७।८ **उल्बणैः** = તીવ્ર [કર્મરોગો] વડે.

१७।९ **मरुपांथा इव** = મરૂધર દેશ (મારવાડ) ના મુસાફરોની જેમ.

१८।१० **अयं परिकरः** = આ બાહ્ય આડંબરો. [દીક્ષાગ્રહણ, વ્રતપાલન, તપશ્ચર્યા કરવી વિગેરે બાહ્ય આડંબર]

१९।११ **नाटकस्याऽऽमुखं हि तत्** = નાટકની શરૂઆતની ભૂમિકા.-

२०।१ **चिररात्राय** = ચિરકાલ.

२१।२ **उदगास्त्वं सुधाकरः** = [જે રાત્રીયે અકલંકિત દેહધારી] સુધાકર–ચન્દ્ર તું ઉદયને પામ્યો.

२१।३ **एहिरेयाहिरापरैः** = આવવા જવામાં તત્પર–પ્રવૃત્તિપરાયણ.

२१।४ **चतुर्यामधर्मप्रदर्शक** = ચાર મહાવ્રતરૂપધર્મને બતાવનાર. (બાવીસ જિનના શાસનમાં હિંસાવિરતિ, અસત્યવિરતિ સ્તેયવિરતિ અને પરિગ્રહવિરતિરૂપ ચાર પ્રકારના મહાવ્રતમય ધર્મ હોય છે.)

२२।५, पंकजं पंकजमपि = કાદવમાં ઉત્પન્ન થયેલું પણ કમલ (મલીનતાને નથી પામતું.)

२२।६ चिरं निविशतां = લાંબા કાળસુધી રહો. (અહિંથી શરૂ થતા એ ૭ શ્લોકો વીતરાગસ્તોત્રના વીસમાં 'પ્રકાશ'ના શ્લોકો મુજબ છે.)

२५।७ संवृतद्वारसमुद्‌घाटनकुंचिका = (નિર્વૃત્તિના) બંધ રહેલા દ્વારને ઉઘાડવાને સારૂ ચાવી–કીલી સમાન.

२६।८जानुदघ्नोऽधुना = હમણાં (સંસાર સાગર) જાનુપ્રમાણ (રહેલ છે.)

२६।९ अर्थवादाग्रहो मम = સ્તુતિ કરવા વિષેનો મારો આગ્રહ.

२६।१० श्वभ्रिणामपि = નારકોને પણ.

२८।१ निर्वाणवैताढ्यगिरेः = મોક્ષરૂપ વૈતાઢ્ય પર્વતનું–(દ્વાર આજે ઉઘડશે.)

२९।२ शेफालिकापुष्पमिव = શેફાલિકાના ફુલની જેમ.

३१।३ दास्ये यथा तव = તારા દાસપણામાં (હું) જેમ (શોભું છું)

३२ । वीतरागोऽसि चेद्रागः = તું વીતરાગ છે, (છતાંએ તારા હાથ-પગમાં રાગ–લાલાશ કેમ છે ?) (સામાન્ય રીતિયે મહાન પુરૂષોના હાથ–પગ આદિ અમૂક અવયવોમાં લાલિમા હોય છે,)

३२।५ प्रजानां यदि गोपस्त्वं = (વીતરાગને ઉદ્દેશીને કહેવાય છે.) જો તું જગતની રક્ષા કરનાર ગોપ–રક્ષક છે (તો તું ગોપ–ગોવાલની જેમ દંડને હાથમાં શા સારૂ રાખતો નથી ?)

३२।६ तत्किं रत्नत्रयाप्रियः = (જો તેં અલંકાર આદિ બાહ્ય પરિગ્રહ

ત્યજી દીધેલ છે) તો શા સારૂ રત્નત્રયીને પ્રિય માનોને વિહરે છે ? (રત્નત્રય-દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્રરૂપ ત્રણ રત્નો.)

૩૩।૪ **महीयसे** = મહાન પૂજનીય (આપને નમસ્કાર).

૩૩।૫ **जगन्मोहमहानिद्राविद्रावणदिवाकरः** = જગતની મોહરૂપ મહાનિદ્રાને દૂર કરવાને સારૂ સૂર્ય સમા.

૩૪।૬ **जीमूत इव नूतनः** = નૂતન મેઘની જેમ.

૩૪।૭ **कृष्णपक्षतमस्विनी** = વદિ પક્ષની રાત સમાન.

૩૮।૮ **स्यूतानीवाऽऽत्मना** = આત્માની સાથે પરોવાઈ ગયેલા.

૩૮।૯ **स्नायं स्नायं** = નાહી નાહીને.

૩૫।૧૦ **सूर्यास्तेन्दूदयाऽन्तरे**=સૂર્યના અસ્ત પછી અને ચન્દ્રના ઉદયનીપૂર્વે.

૩૫।૧ **निर्विवेकविलोचनम्** = વિવેકરૂપ નેત્રથી રહિત.

૩૫।૨ **नरकावटपाताय**=નરક ગતિના કૂપમાં પડવાને સારૂ.

૩૫।૩ **मिथ्यात्वाऽऽशीविषः** = મિથ્યાત્વરૂપ સર્પ.

૩૬।૧ **कल्याणीभक्तिके मयि** = કલ્યાણમયી ભક્તિવાલા મારા વિષે.

૩૬।૨ **वृषः** = એકપક્ષે ધર્મ, બીજા પક્ષે બળદ.

૩૬।૩ **मध्येसभम्** = સભાની મધ્યમાં.

૩૬।૪ **उच्चैस्त्वं** = મહત્તા-મહત્ત્વ.

૩૭।૫ **मोक्षायैव** = મોક્ષને સારૂ.

૩૭।૬ **श्रुतदेशनः** = જેણે દેશના-જિનનું વચન સાંભલેલ છે તે.

૩૭।૭ **वर्षुकाब्दः** = વરસવાના સ્વભાવવાલો મેઘ.

૩૭।૮ **संसारधन्वनि**=સંસારરૂપ મરૂધર (મારવાડ) ની ભૂમિમાં.

३७।९ **ज्योतिष्मतां पतिः**=ચન્દ્ર. (ક્રૂરગ્રહોથી જેમ ચન્દ્ર રક્ષણ આપનાર છે તેમ ક્રૂરપાપોથી (તું) જિનેશ્વરદેવ રક્ષણ આપનાર છે.)

३८।१० **संप्राप्तसंमदः** = જેણે હર્ષ મેલવ્યો છે તે.

३८।१ **रंभाऽऽरामैः** = કેળના ઘટાદાર ઉદ્યાનોથી.

३९।२ **आमयाः** = રોગો.

३९।३ **खलूक्त्वा यदि वानल्पमल्पमेतद् ब्रवीम्यहम्** = કહેવાથી સર્યું, (છતાંયે) ઘણું કે થોડું હું કહું છું.

३९।४ **महायाद इव** = મહાન જલજન્તુની જેમ.

३९।५ **नगदंता** = (સમુદ્રમાં રહેલા) પર્વત દન્તો.

४०।१ **नितान्तकोपनैः**=ગુસ્સાખોરોથી(રાક્ષસોની સમાન જટાધારીઓથી)

४०।२ **गोमायुभिरिव द्विजैः** = શિયાલવા સમાન બ્રાહ્મણોથી.

४१।३ **सिद्धेनेव विवेकाक्षं मिथ्यात्वेन विलुंपता**=સિદ્ધપુરૂષો સમાધિમાં જેમ આંખો મીંચી દે તેમ વિવેકનેત્રોને મીંચી નાંખતા મિથ્યાત્વથી.

४१।४ **त्वत्पादपद्यामासाद्य** = તારા ચરણરૂપ પુલને મેળવીને.

४१।५ **अध्यासितम्** = મેળવ્યું.

४२।६ **यत्राऽमलीभविष्यामः** = જ્યાં અમો નિર્મળ થઈશું.

४२।७ **अंगावयवराजत्वं** = શરીરના અવયવોમાં રાજાપણાને–મહત્ત્વને (અમારી દૃષ્ટિઓ પામી)

४२।८ **केवलालोकमार्तंडतिरोभावनिबंधनम्** =(હે પ્રભો ! ઘુવડોની

જેમ, તારું દર્શન મિથ્યાદષ્ટિ આત્માઓની દષ્ટિઓને) કેવલ-જ્ઞાનના પ્રકાશરૂપ સૂર્યથી અંધાપાનું કારણ છે–કારણભૂત છે.

४२।९ **त्वद्दर्शनसुधापानसमुच्छ्वासितवर्ष्मणाम्** =(હે પ્રભો !) તારા દર્શનના અમૃતપાનથી જેઓનો દેહ શમુચ્છ્વસિત-ઉલ્લસિત બનેલ છે.

४२।१० **विवेकदर्पणोन्मार्ष्टिसमुत्पादनकर्मठाः** = વિવેકરૂપ દર્પણ-અરિસાને સાફ કરવાને ઉપયોગી–સમર્થ.

४३।१ **छत्राऽशून्यशिरसः** = છત્રથી જેઓના મસ્તક શોભી રહ્યાં છે.

४३।२ **लुठन्ति तेषां कंठेषु दोर्लताः सुरयोषिताम्** = તેઓના કંઠોમાં સુરસ્ત્રીઓની ભુજાલતાઓ આળોટે છે.

४३।३ **चारुचारीचतुरं** = સુન્દર પ્રકારના નૃત્યક્રીડનોથી મનોહર.

४४।४ **अधित्वन्मेऽधिकारोऽस्तु** = તારે વિષે મારો અધિકાર હો.

४४।५ **देहभाजां मनोवित्तं** = શરીરધારીઓનું (શુભ) મનોદ્રવ્ય–ભાવના

४४।६ **मानेन भूतेनेवाऽऽत्ताः** = ભૂતની જેમ માનથી પીડાયેલા.

४४।७ **स्रोतसी** = બે પ્રવાહો.

४५।१ **अपाग्भरतवर्षे** = દક્ષિણ ભરતક્ષેત્રમાં.

४६।१ **जगच्चक्षुश्चकोरानंदचन्द्रमाः** = ચકોરની જેમ જગતના ચક્ષુ-ઓને આનન્દ આપનાર ચન્દ્ર.

४६।२ **गतच्छद्मा तथाऽप्यसि** = (હે પ્રભો ! જો કે આપ છદ્મસ્થ તરિકે વિચરો છો) [ચાર પ્રકારના ઘાતીકર્મોને ખપાવ્યા પહેલાં] છતાંયે આપ કપટ–છદ્મ વિનાના છો.

४७।१ **विश्वजनीनाय** = વિશ્વના હિતકારીને, (નમસ્કાર.)

४७।२ **संचितैनस्तमस्विन्याः** =રાત્રિની જેમ સંચિત પાપોને, (નાશ કરવાને પ્રભાત સમાન.)

५१।१ **चतुर्दशमहारत्नीम्** =(સંસારી અવસ્થામાં ચક્રવર્તિ હોવાને કારણે,) ચૌદ રત્નોને, (નિઃસંગતાથી છોડયાં.)

५१।२ **कैवल्यभागसि** =(ક્રોડો દેવતાઓથી વીંટાયેલ હોવા છતાંયે) (હે પ્રભો !) આપ કૈવલ્ય–એકાકિભાવને પામ્યા છો. (પણ આ અર્થ અસંગત લાગે છે, વિરોધભાસ જણાય છે. માટે) અથવા કેવલજ્ઞાનના ધારનાર છો,

५२।१ **निमज्जद्भिरिवोडुपः** =ડૂબતાઓને નાવની જેમ.

५३।२ **व्याघ्रभीतैरिवार्चिष्मान्** =વાઘથી ડરેલાઓને અગ્નિની જેમ (લોકવ્યવહાર એમ કહે છે કે અગ્નિ એ વાઘથી રક્ષણ આપે છે.)

५३।३ **नाथामि** =(હે નાથ ! આપને) હું પ્રાર્થના કરૂં છું.

५५।१ " **अस्मिन् मेरुगिरि धत्र्याः सुवर्णमुकुटायते, इन्द्रनील इव न्यस्त स्त्वमतीव विराजसे** "=(મુદ્રિત પ્રતમાં આ શ્લોક આ મૂજબનો છે–**अस्मिन् मेरुगिरौ धात्र्याः सुवर्णमुकुटायते, इन्द्रनील इव न्यस्ता त्वमतीव विराजसे**" છતાંયે અમૂક પ્રકારની અર્થસંગતિ અમને અમારા ક્ષયોપશમ મૂજબ ન દેખાતાં આ રીતિયે આ પદ્યને અમૂક પરિવર્તનપૂર્વક મુકવું પડેલ છે. પણ એ ફેરફારને સ્પષ્ટ કરવા અને અમે કરેલ ફેરફારમાં ભૂલ થતી હોય તો તેને અંગે, તજ્જ્ઞોની તરફથી ખૂલાસો મળી જાય એજ ઇચ્છાથી અત્ર તેનું ટીપ્પણ કરેલ છે.)

=મેરૂપર્વત એ પૃથિવીપર સુવર્ણવર્ણ-

મુકુટશો છે, (અને હે પ્રભો !) તું મુકુટપર જડેલા ઇન્દ્રનીલની જેમ આ (મેરૂપર્વત) પર અતિ સુન્દરતાથી શોભી રહેલ છે,

૫૫।૨ **द्वितीयमतिरिच्यते**=(એક બાજૂયે સઘલાયે ધર્મો અને એક બાજૂયે (હે નાથ ! તારૂં દર્શન ફલની પ્રાપ્તિનું સાધક હોવાને કારણે) બીજું (તારૂંદર્શન) અધિક છે.

૫૫।૩ **रक्षातिलकसन्निभाः**=(ભવભીત આત્માઓને માટે) રક્ષાને સારૂના તિલકસમાન, (છે.)

૫૬।૪ **व्रतपर्यायदेशीयम्**=વ્રતપર્યાયના સમાન.

૫૬।૫ **निजैर्लूतै तंतुभिः**=પોતાના તંતુથી (સપડાતી–બંધનને પામતી) લૂતાની જેમ.

૫૬।૬ **यकाभि स्तित्तरि रिव**=જે વચનોના યોગે તેતર જેમ વિપત્તિને પામે છે તેમ.

૫૭।૭ **यद्वाऽस्तु**=ભવનો છેદ થાઓ અથવા ભવોભવ તારી ભક્તિ હો.

૫૭।૭ **अविरतानां नः**=અવિરત એવા અમારો. (ઇન્દ્ર પોતે કહે છે).

૫૭।૮ **सर्वगः प्रतिभासि नः**=(હે પ્રભો ! તું ભરતક્ષેત્રમાં રહેવા છતાંયે) સર્વ સ્થાને અમોને જણાય છે.

૫૮।૯ **अस्तु च्यवनकालेऽपि**=ચ્યવન કાલને અવસરે હો. (ઇન્દ્રકહે છે.)

૮૫।૧ **श्रुतस्कंधवत्सप्रसविनीम्**=(હે પરમેશ્વર !) વાછરડાઓની જેમ શ્રુતસ્કન્ધને જન્મ આપનારી (તારી વાણીને અમે વંદન કરીએ છીએ.)

૫૮।૨ **अंहःपिशाचैः**=પિશાચોની જેમ પાપોથી.

५९।१ **तद्दृष्टो येन धार्यसे**=તે (ચક્ષુઓથી)થી નીહાળેલ (જે હૃદયથી) (હે નાથ!) તું સ્થાન મેળવાય છે.

६०।५ **किणावलिः**=(મારા ભાલસ્થલને વિષે) ઘા-ક્ષતોની પંક્તિ.

६०।६ **व्याहर्ता**=(મોક્ષમાર્ગના) કહેનાર.

६०।७ **अविकत्रोपकर्त्रा**=અવિકૃતરીતિયે ઉપકારક (આપ) થી.

६०।८ **अदातर्यपवर्गस्य**=સુન્દર રીતિયેને મોક્ષમાર્ગને આપનારાને (હે પ્રભો! આપને) વિષે.

६२।१ **मालवकैशिकीमुख्यग्रामरागमनोरमाम्**=માલકોશ આદિ ગ્રામ સૂરોથી સુન્દર, (વાણીથી.)

६२।२ **तार्क्ष्यावलोकनात्**=ગરૂડને જોવાથી.

२२।३ **गुणस्थानकमालिकाम्**=ગુણસ્થાનકોની શ્રેણીને.

६२।४ **ममास्त्वन्यत्**=મારૂં અન્ય (ગમે તેમ) હો.

६३।१ **अभ्यर्णमोक्षाय**=મોક્ષની નજીકમાં રહેલા (હે પ્રભો! આપને નમસ્કાર)

६३।२ **भवतो दर्शनेनैव**=આપના (અતિ મહિમાવંત) દર્શનથીજ.

६३।३ **विनैव कारणं त्राता**=કારણ વિનાજ રક્ષણહાર–બેલી.

६३।४ **बोधिदस्त्वमवातरः**=બોધિને આપનાર (હે વિભો!) તેં જન્મ લીધો છે.

६४।१ **अस्ताघः**=ગંભીર.

६४।२ **ललनाललितैः**=સ્ત્રીઓની લલિતક્રીડાઓથી.

६४।३ **बन्धूनां ता गिरोऽधुना**=બાન્ધવોની (વ્રતનો નિષેધ કરનારી) તે વાણી હાલ.

६४।४ **दुराग्रहैर्बन्धुवर्गैर्दिष्ट्या**=આનન્દની વાત છે કે દુરાગ્રહવાલા તે બાન્ધવ જનોથી.

६५।१ **व्याकोशेन्दीवरत्त्विषे**=વિકસિત–ખીલી ઉઠેલા કમલની સમાન કાન્તિવાલા.

६५।२ **अष्टाग्रसहस्रनरलक्ष्मणे**=(જો કે મુદ્રિતપ્રતમાં '**लक्ष्मणे**' ને સ્થાને **लक्षणे** છે, પણ ચતુર્થીનું એકવચન હોવાને કારણે **लक्षणे** પદની સંગતિ બની શકતી નથી. તે કારણે આ ફેરફાર કરવો પડેલ છે. એ ફેરફારને સ્પષ્ટ કરવા અને તજ્જ્ઞોને અમારી ક્ષતિ જણાતી હોય તો તે જણાવવાને સારૂ અત્ર સૂચન છે.) એકહજારને આઠ નર–મનુષ્યના લક્ષ્મ–ચિહ્ન લક્ષણોને ધારણ કરનાર. (હે દેવાધિદેવ ! આપને નમસ્કાર)

६५।३ **सर्वसंपदमत्राय**=સર્વ કલ્યાણ સંપત્તિઓના અમત્ર–આધારસમા (હે જિન ! આપને નમસ્કાર.)

६६।४ **निर्यामोऽपि त्वमेव हि**=નાવિક પણ (હે દેવ !) તું જ છો.

६६।५ **प्राणिनामहहोत्सवः**=આનન્દની વાત છે કે–જનસમાજને મહોત્સવ રૂપ છે.

६८।१ **सर्वजनीनाय**=સર્વ જગતના હિતકારી આપને નમસ્કાર.

६९–२ **तत्त्वदृश्वने**=તત્ત્વદષ્ટા આપને નમસ્કાર.

७१=१ **वात्यानर्तिताब्धितरंगवत्**=પવનથી નાચી ઉઠતા સાગરના તરંગની જેમ.

७२–२ **बालिशः**=મૂર્ખ.

७२–३ **अवक्रयात्तवेश्मेव**=ભાડે રાખેલા મકાનની જેમ.

॥ प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥

द्वितीयः अध्याय

पृष्टांक–टीप्पणांक–

७४।१ **स श्रद्धेयः स च ध्येय:**=ઉપરના સાડા ત્રણ શ્લોકમાં, **यद्** સર્વ નામની સાતેય વિભક્તિઓ દ્વારા જે સ્તુતિ કરવામાં આવેલ છે, તેનો સંબંધ, આ પ્રકાશના સાડા પાંચ શ્લોક સુધી છે. (અર્થાત્ ત્યારબાદના બે શ્લોક સુધી છે.)

७५।२ **अरण्यानीं**=મહાન અરણ્ય=ગાઢ અટવીને.

७५।३ કેટલાક મુદ્રિત પુસ્તકોમાં પ્રથમ પ્રકાશનો નવમો શ્લોક છે, પણ ટીકાકારે તેને સંગ્રહેલ નહિ હોવાથી અત્ર તેને સંગ્રહેલ નથી.

७५।४ **प्रियंगुस्फटिक**=તેવા પ્રકારના નામકર્મના યોગે, શ્રી અરિહંત પરમાત્માઓનો દેહ પંચવર્ણોનો હોય છે. તેનો આ ઉલ્લેખ છે.

७५।५ **अधौतशुचि:**=નહિ ધોવા છતાંયે નિર્મળ.

७५।६ **त्वय्यादर्शतलालीनप्रतिमाप्रतिरूपके**=હે જગન્નાથ ! જેમ અરિસાના મધ્યભાગમાં દેહનું પ્રતિબિંબ, ઉષ્ણાદિ ઋતુઓમાં પણ પરસેવા આદિથી રહિત હોય છે, તે પ્રકારની સ્થિતિ આપના દેહને વિષે સ્વાભાવિક છે.

७६।७ **रागमुक्तं**=આપનું મન કેવળ રાગમુક્ત છે, એટલું નહિ પણ આપના શરીરની અંદર રહેલું લોહી-રક્ત તે પણ રાગ–લાલશથી રહિત છે.

૭૬।૮ **अविश्रमबीभत्सं** = દુર્ગન્ધ વિનાનું અને સુગ ન ચઢે તેવું.

૭૬।૯ **गोचरश्चर्मचक्षुषाम्** = અહિં શબ્દશાસ્ત્રની દષ્ટિથી જો કે-**गोचरो** એ મુજબ જોઇએ, છતાંયે-" અમુક પ્રકારના છન્દોબન્ધની સુન્દરતાને સારૂ લિંગબદ્ધતાને અંગે ભિન્ન વચન હોવામાં દોષ નથી " (વી૦ સ્તો. ટીકા.)

આ (૨) પ્રકાશમાં, જન્મસિદ્ધ ચાર અતિશયો વર્ણવામાં આવેલ છે.

૭૩।૧૦ **सर्वाभिमुख्यतो नाथ !** = હે નાથ ! સર્વાભિમુખ્ય નામના અતિશયના યોગે.

૭૭।૧૧ **साग्रेऽपि योजनशते** = અગ્રની સાથે તે સાગ્ર-સવાસો યોજન સુધીમાં.

૭૭।૧ **क्षितिपक्षिप्ता** = રાજાની આજ્ઞાથી દૂર કરાયેલ (અનીતિઓની જેમ)

૭૭।૨ **स्त्रीक्षेत्रपद्रादिभवः** = સ્ત્રી, ક્ષેત્ર-જમીન, પદ્ર-ગામ નગર વિગેરેથી ઉભો થયેલ ઉપદ્રવ-બખેડો.

૭૭।૩ **अशिवोच्छेदडिण्डिमे** = અશિવનો ઉચ્છેદ કરનાર ડિણ્ડિમ-ભેરી સમ આપ હોયે છતે.

૭૭।૪ **अतिवृष्टि** = અકાલે વરસાદ.

૭૭।૫ **कल्पपादपे** = હાલતા ચાલતા કલ્પવૃક્ષસમા.

૭૭।૨ **माभूद् वपुर्दुरालोकमितीवोत्पिण्डितं महः** = તેજના અંબાર સમો આપનો દેહ, અન્યોને દુઃખથી જોઇ શકાય તેવો ન બને એ આશયથી, જાણે કે આપનાં સઘળાંયે દેહના તેજને

એકઠું કરી લીધેલ હોય તેમ આપનાં મસ્તકની પાછળ સૂર્યના તેજને જીતીલેનાર ભામંડલ શોભે છે.

૭૮।૭ **कर्मकक्षमुन्मूलयति**=ગાઢ ઝાડીની જેમ કર્મને મૂળથી ઉખેડી નાખનાર.

૭૮।૮ **क्रियासमभिहारतः**=ક્રિયાના વારંવારના અભ્યાસથી.

૭૮।૯ **मैत्रीपवित्रपात्राय**=મૈત્રી ભાવનાના પૂનીત પાત્ર સમા.

૭૮।૧૦ **जंभविद्विषा**=ઇન્દ્રે ઉંચી કરેલી તર્જની આંગળીની જેમ ઇન્દ્રધ્વજ છે.

૭૯।૧ **तामसा स्तिग्मरोमिषः**=સૂર્યની સન્મુખ અન્ધકારનો સમૂહ શું સમર્થ બની શકે કે ?

૮૧।૧ **त्वां प्रपद्यामहे**=આગલના અર્ધાપદ્યમાં આવેલા ત્રણેય પદોનો સંબન્ધ, ઉત્તરના ત્રણપદોની સાથે છે. પૂર્વના પદો કાર્યરૂપ છે, ઉત્તરના પદો કારણરૂપ છે.

૮૨।૨ **जगज्जन्मक्षेमक्षयकृतोद्यमान्**=જગતના સર્જન, પાલન, અને નાશમાં ઉદ્યમવાલાઓને.

૮૨।૩ **जठरोपस्थदुःस्थित**=રસના, સ્પર્શના આદિ ઇન્દ્રિયોના નિર્મર્યાદવિકારોથી પીડાતા દેવોથી.—(પેટ અને ઇન્દ્રિય–વિષયથી)

૮૨।૪ **खपुष्पप्रायम्**=આકાશના કુસુમ–ફૂલની જેમ નિરર્થક.

૮૨।૫ **कामरागस्नेहरागौ**=પતિ–પત્નીનો પ્રેમસંબન્ધ કામરાગ, પુત્રાદિપરિવારોને વિષે વત્સલભાવ સ્નેહરાગ. સ્હેજે નિવાર્ય છે.

૮૨।૬ **मूढाः**=મૂર્ખાઓ તારા વિષે ઉદાસીન રહે છે.

८३।८ **धर्माधर्मौ विना नाऽङ्गम्**=વેદને અપૌરૂષેય માનનાર અને દેવને સદાને શરીર રહિત સ્વીકારને આ પ્રશ્નનું મૂલ છે.

८३।८ **अदेहस्य जगत्सर्गे**=દેહરહિતને જગતની રચના કરવી શોભતીજ નથી.

८३।९ **कुमारवत्**=બાલકની જેમ ક્રીડા કરનાર હોવાથી રાગવાન હોવાની શક્યતા છે.

८३।१० **दुःखदौर्गत्यदुर्योनिजन्मादिक्लेशविह्वलम्**=જ્યારે કરૂણાનિધાન પરમાત્મા સ્વયમેવ જગતને સરજે છે, તો કાય, વાણી અને મનનાં દુઃખોથી, દરિદ્રતાથી, તિર્યંચ—નારક આદિ દુર્ગતિઓના પાતથી અને જન્મ—જરા—મરણ વિગેરેના ક્લેશથી પીડિતજનોને શા સારૂ સરજે ?

८३।११ **किममनेन शिखण्डिना**=સર્વ રીતિયે અકિંચિત્કર એવા આથી (ઇશ્વરથી) શું ?

८३।१२ **परिक्षाक्षेपडिंडिमः**=કોઇએ પણ અમારા આ મન્તવ્યને અંગે પૂછવું નહિ આ મૂજબનો પરીક્ષકોને ઢંઢેરો પીટાય છે.

८३।१३ **ज्ञातृत्वं यदि सम्मतम्**=જે સર્વ લોકાલોકસ્થ પદાર્થોના જાણવાપણાને કર્તૃત્વ સ્વીકારતા હો તો તે અમને સમ્મત છે.

८३।१४ **उन्मुच्येत्यप्रमाणकम्**=અપ્રામાણિક સૃષ્ટિવાદના અભિનિવેશ—અસદાગ્રહને છોડીને.

८४।१ **कृतनाशाऽकृतागमौ**=વસ્તુ માત્રને એકાન્ત—નિશ્ચયપૂર્વક નિત્ય જ માની લેવામાં, કરેલાનો નાશ, અને નહિ કૃતનો આગમ.

આ બન્ને દોષો આવે છે. (આ વસ્તુને ગુરુગમથી જાણી લેવી જરૂરી છે, અત્ર લખતાં વિસ્તાર થાય તેમ છે.)

૮૫।૨ **न भोगः सुखदुःखयोः**=આત્માને એકાન્ત નિત્ય સ્વીકારવામાં, સુખદુ:ખનો ભોગ ઘટી શકે તેમ નથી.

૮૫।૩ **बन्धमोक्षौ**=જે લોકો એકાન્ત દૃષ્ટિને સ્વીકારીને દર્શન વ્યવસ્થાને સ્વીકારે છે, તેઓના મન્તવ્યથી બન્ધ–મોક્ષ વિગેરે તત્ત્વો સુસંગત રીતિયે ઘટી શકતા નથી.

૮૫।૪ **युज्यते अर्थक्रिया नहि**=અર્થક્રિયા જે પદાર્થમાત્રનું સ્વરૂપ છે, તે એકાન્ત નિત્યની માન્યતાને ધરાવનારના મન્તવ્યથી ઘટી શકતું નથી.

૮૫।૫ **नित्यानित्यस्वरूपता**=જો વસ્તુનુંસ્વરૂપ નિત્યાનિત્ય રૂપે સ્વીકાર્ય બને તો–

૮૫।૬ **असत्प्रमाणप्रसिद्धितः**=અસત્ પ્રમાણની પ્રસિદ્ધિથી–પ્રમાણાભાસથી.

૮૫।૭ **नानाऽऽकारकरम्बितम्**= અનેક પ્રકારના આકારોથી મિશ્રિત–જ્ઞાનના સ્વરૂપને સ્વીકારનાર.

૮૫।૧૦ (૮) **तथागतः**=બૌદ્ધ.

૮૫।૧૧ (૯) **योगो वैशेषिको वा**=નૈયાયિક અને વૈશેષિક કોઇ રીતિયે અનેકાન્ત–સ્યાદ્વાદને ખંડિત કરી શકે તેમ નથી.

૮૫।૧૨ (૧૦) **संख्यावतां**=બુદ્ધિવાનોનો મુખ્ય.

૮૫।૧૩(૧૧) **यस्य मुह्यति शेमुषी**=જેની બુદ્ધિ, પરલોક, આત્મા, અને મોક્ષ વિગેરેમાંજ મૂંઝાઇ જાય છે,–

८५।१४ (१२) **वस्तु वस्तुसत्**=વસ્તુવૃત્યા સત્ વસ્તુને. (આ પાઠ ટીકાકારને સમ્મત છે. અન્ય મુદ્રિત પુસ્તકોમાં '**वस्तुतस्तु सत्**' એ મૂજબ છે.)

८५।१ **त्वद्भक्तेः फलम्**=(ટીકાકારને આ પાઠ સમ્મત છે. અન્ય મુ. પુ. માં **त्वद्भक्तैः** છે.)

८६।२ **श्राद्धः श्रोता**=સાંભલનાર વર્ગ શ્રદ્ધાલુ, બોલનાર બુદ્ધિમાન–સમસ્ત શાસ્ત્રના અર્થભૂત રહસ્યના રસસાગરને અવગાહી શકે તેવી સમર્થ બુદ્ધિને ધરનાર.

८३।३ **कलये वामकेलये**=પ્રતિકૂલ આચરનાર કલિયુગપર ફોગટ ગુસ્સો કરીયે છીએ.

८६।४ **कलिरेव कषोपलः**=કલિયુગ–દુષમ કાળ એજ કસોટી છે.

८३।५ **काकतुण्डस्य नेधते**=અગ્નિ વિના કૃષ્ણાગરૂ–ધૂપની વાસ મ્હેકતી નથી.

८६।३ **त्वद्दर्शनविनाकृतः**=તારા દર્શન વિના.

८६।७ **त्वत्तः कलिरशोभत**=ઘણા દોષવાળો કલિકાલ પણ તારા જેવા સર્વથા દોષમુક્ત પુરૂષથી શોભે છે.

८७।१ **त्वत्प्रसादादियं पुनः**=હે નાથ ! સમભાવવાસિત બનવાથી મારા મનને હું પ્રસન્ન કરીને તારી આજ્ઞાને સારી રીતિયે આરાધું તોજ તારી મહેરબાની. (અને તે સમભાવના તારાજ આલંબનથી છે.)

८७।२ **गुणस्तुत्योऽस्ति वस्तुतः**=આથી બીજો તારો કયો ગુણ સ્તુત્ય છે ?

૮૭।૩ **विरक्ति श्च समं त्वयि** = એક બાજૂયે બહારથી વિષયોના સુખોનો સંગ, જયારે મનની વૈરાગ્યદશા બીજી બાજૂ.

૮૭।૪ **दुर्घटा घटतां कथम्** = સંભવિત બનવા છતાંયે એ દુઃસંભાવ્ય કઇ રીતિયે ઘટે ?

૮૭।૫ **द्वयं विरुद्धं भगवँस्तव** = હે ભગવન્! તારા જીવનમાં જે બન્ને ઘટનાઓ પરસ્પર વિરોધી છે, તે અન્ય કોઈનાયે જીવનમાં નથી.

૮૭।૬ **यस्य कल्याणपर्वसु** = જેના પાંચેય કલ્યાણક પર્વના દિવસોમાં

૮૮।૧ **यद्देहस्यापि दानेन** = બૌદ્ધાદિ અન્યદેવો, ક્ષુધિત આત્માઓને પોતાના દેહના દાનથી પણ–

૮૮।૨ **भीमकान्तगुणेनोच्चैः** = રાગાદિ આન્તર શત્રુઓને વિષે ચંડવૃત્તિ, અને સર્વ જગતમાત્રના સત્ત્વોની પ્રત્યે કાન્ત–કૃપાભાવ,

૮૮।૩ **सर्वात्मनऽन्येषु** = સર્વદોષો સર્વરીતિયે અન્યોને વિષે.

૮૯।૪ **गोचरमागमत्** = સ્તુતિને કરનાર મારી સ્તુતિના વિષય સ્વામી બન્યા. (અન્ય મુ૦ પુ૦ માં ‘ **आगमः** ’ પાઠ છે, પણ ટીકાકારને સમ્મત પાઠ ‘ **आगमत्** ’ છે.)

૯૧।૧ **वैराग्यमाहरः** = હે સ્વામિન્! સુન્દર પ્રકારના પૂર્વ ભવોના અભ્યાસથી તેવી રીતિયે વૈરાગ્યની ઉન્નત સ્થિતિને આપે જીવનમાં એકરસ બનાવેલ છે.

૯૧।૨ **दुःखहेतुषु वैराग्यं** = હે જગન્નાથ! મોક્ષના ઉપાયોને વિષે સાવધ એવા આપનો જેવી રીતિયે સુખના કારણોમાં વૈરાગ્યરસ અમન્દ રીતિયે હેતુવિના મોક્ષની પ્રાપ્તિ સુધી વહેતો જ રહે

છે, તે રીતિનો દુઃખનાં કારણોમાં ક્ષણિક હોવાને કારણે તે વૈરાગ્ય રહી શકતો નથી.

८९।३ **विवेकशाणौ**=વિવેકની સરાણ ઉપર. (ટીકાકારને " **शाणौ** " પાઠ સમ્મત છે.)

८९।४ **शातं**=સરણપર ચઢાવેલ.

९०।१ **अनाहूतसहायस्त्वम्**=બોલાવ્યા વિના સહાય આપનાર.

९०।२ **अनक्तस्निग्धमनसम्**=સ્નેહ દર્શાવિના પણ સ્નેહાલ-કૃપાળુ મનવાલા આપને.

९०।३ **अचण्डवीरव्रतिना**=સુભટવ્રત કઠીન-ચંડ હોય છે, જ્યારે હે કૃપાસાગર ! આપ અચંડ સુભટવ્રતથી-(ટીકાકારના મતે '**वीरव्रतिना**' પાઠ છે.)

९०।४ **अभवाय महेशाय**=ભવ નહિ હોવા છતાંયે મહેશ-મહાદેવ એવા આપને નમસ્કાર. (લોકમાં મહાદેવને ભવ કહેવાય છે.)

९०।५ **अनुक्षितफलोदग्रात्**=સીંચ્યાવિનાના પણ આલોક અને પરલોકનાં ફળોથી પરિપૂર્ણ આપથી—

९०।६ **फलानुध्यानवन्ध्योऽहं**=હે ત્રિલોકબન્ધો ! આપને કોઇપણ ફલ મેલવાનું હવે બાકી નથી, કારણ કે આપ પોતેજ ફલ સ્વરૂપ છો-સિદ્ધ છો, જ્યારે હું ફળ સ્વરૂપ આપના ચિંતન-ધ્યાનથી વંધ્ય છું—રહિત છું.

९१।१ **मनःशल्यं वियोजितम्**=હે નાથ ! સ્વભાવથી જ આપે શલ્ય-સમા મનને છૂટું પાડી નાખ્યું.

૧૧।૨ **त्वयेन्द्रियजयः कृतः**=તેવા પ્રકારના અભ્યાસના યોગે વિષયોથી પોતાની મેળેજ વળેલી ઇન્દ્રિયોને તેં જીતી લીધી.

૧૨।૩ **आबालभावतोऽप्येषः**=જન્મકાલથી–આબાલભાવથી જ આપ પોતે યોગસ્વરૂપદશાને પામી ચૂકેલ છો.

૧૨।૪ **स्वामिन् इदमलौकिकम्**=જન્મથી માંડીને યોગને નહિ જોવા છતાંયે (અભ્યાસદ્વારાયે) આપનું યોગમાં પ્રભુત્ત્વ તે સાચેજ અલૌકિક છે.

૧૨।૫ **उपकारपरे परे**=તારા શાસનથી બાહ્ય દેવ ગણાતા લોકો, ઉપકારને વિષે તત્પર અન્યોપર તેવી કરુણા રાખી શકતા નથી કે જેવી અપકારી જનોપર આપ રાખો છો.

૧૨।૬ **हिंसका अप्युपकृता**=હિંસક ગણાતા ચંડકૌશિક જેવાઓ પર આપ ઉપકાર કરવા તત્પર થયા, જ્યારે આશ્રિત શ્રીસુનક્ષત્ર મુનિ વિગેરે જેવાપર ઉપેક્ષાવૃત્તિને રાખી શકયા.

૧૨।૭ **ध्याता ध्येयं तथा ध्यानं**=ધ્યાતા, ધ્યેય, અને ધ્યાન તારા વિષે એકસ્વરૂપ બનેલ છે.

૧૩।૧ **मुद्रयैव जगत्त्रयी**=ઉદાત્ત શાન્ત મુદ્રાથી જ આપે ત્રણેય જગતને જીતી લીધા છે.

૧૩।૨ **त्वमपोहितः**=જે પાપવાન લોકોએ તને અવજ્ઞાભાવથી જોયો છે, તેનાથી તારી કાંઇ લઘુતા નથી જ થઇ. (**अपोहितः** એ પાઠ ટીકાકારને સમ્મત છે.)

૧૩।૩ **उल्मुकाकारधारिणीम्**=સળગતા અંગારાને ધરનારી દૃષ્ટિને.

१३।४ **तमाशुशुक्षणिः**=એવાને અગ્નિ સાક્ષાત્, (આગલનું પદ્ય સ્તુતિકાર શબ્દો દ્વારાયે ઉચ્ચારવાને ઇચ્છતા નથી.)

१३।६ (५), **अनेडमूकाः**=બ્હેરા અને મૂંગા.

१३।७ (६), **शुभोदर्काय**=સારા ભાવિને માટે.

१३।८ (७), **त्वद्गुणग्रामरामणीयकलंपटः**=તારા ગુણસમૂહની રમણીયતા–સુંદરતાનો હું લંપટ થયો—

१३।१ **पराणयन्ति**=મને પરમ આનન્દ–સંપત્તિને પ્રાપ્ત કરાવે છે.

१४।२ **प्रच्छन्नपापताम्**=છૂપી પાપદશાને. (ટીકાકારને **पापताम्** પાઠ સમ્મત છે.)

१४।३ **क्रीडयेवाहम्**=મોહાદિથી ક્રીડાની જેમ હું કપિ–વાનરની પેઠે ચપળતાને પમાયો છું. (**क्रीडयेवाहम्** પાઠ ટીકાકારને સમ્મત છે.)

१४।१३, (४), **इयतीम्**=તારી સ્તુતિ, સેવા, વિગેરે કરી શકું તેટલી સ્થિતિએ હું આવ્યો છું, તે તારી મહેરબાનીથી જ.

१४।१४ (५), **यत्कृत्यकर्मठः**=મારા અંગે જે યોગ્ય લાગે તે કાર્યને કરવાને તું સમર્થ બન.

५५।१ **त्वत्फलभूतान्**=તારા અરિહંતના ફળ સ્વરૂપ સિદ્ધોને.

१५।२ **मा मुचः**=શરણે આવેલા મારાવિષે શરણ્યભાવને તું મા મૂક. (**मामुचः** પાઠ ટીકાકારને સમ્મત છે.)

१३।१ **न नेत्रवक्त्रगात्रादि**=(અન્ય મુ. . પુ. માં **न नेत्रगात्र वक्त्रादि**–છે, પણ ટીકાકારને આ પાઠ સમ્મત છે.)

१६।२ **न जगज्जननस्थेमविनाशविहितादरः** =જગતના સર્જન, પાલન અને નાશમાં હે ભગવન્ ! આપે પ્રયત્ન આચર્યો નથી. આચરવાની આપને જરૂર નથી.

१६।३ **तदेवं सर्वदेवेभ्यः** =એ મૂજબ આપ સર્વ દેવો કરતાં—

१६।४ **अनुश्रोतः** – પાણીના પ્રવાહની અનુકૂલ ગતિ કરતાં પાન, તૃણ, કાષ્ઠ વિગેરે પ્રતીત થઇ શકે છે, પણ—

१६।५ **वैयात्येन** =તારાં દેવત્વની પરીક્ષાની ધીટ્ટાઇથી સર્યું.

१६।६ **सर्वसंसारीजन्तुरूपविलक्षणम्** =સર્વ સંસારીજનોના આચરણથી જે વિલક્ષણભાવ, તેજ તારૂં દેવત્ત્વ–દેવલક્ષણ.

१७।१ **तव चेतसि** =હે વીતરાગ ! તારા હૈયામાં મારૂં સ્થાન હોવું એ તો વાર્તારૂપે પણ દુર્લભ છે, છતાંયે જો તું સાચે મારા ચિત્તમાં વસી જાય તો મારે અન્ય સઘળાથી સર્યું.

१७।३ (२), **सपर्यायाः** =પૂજાથી. (અન્ય મુ૦ પુ૦ માં **सपर्यातः** પાઠ છે, પણ ટીકાકારને આ સમ્મત છે.]

१८।४ (३) **मुष्टिः** =સારરૂપ.

१८।५ (४) **प्रसादनादैन्यम्** =હે વીતરાગ ! તારી મહેરબાનીરૂપ, દીનતાની કાંઇ જરૂર નથી, કેવળ તારી આજ્ઞાથી જ સંસારી જન્તુઓ કર્મપંજરથી મૂકાઈ જાય છે.

१८।६ **पुण्यपरमाणुकणोपमम्** =પુણ્યના પરમાણુકણો સમાન.

१८।७ **किणावलिः** =ઘાની–ક્ષતોની શ્રેણી.

૯૮।૮ **तुदन्ताम्**=(આ પાઠ ટીકાકારને સમ્મત છે, અન્ય મુ. પુ. માં **नुदन्ताम्** છે.)

૯૯।૯ **निर्निमेषता**=નિર્નિમેષપણું,-દેવપણું.

૯૯।૧૦ **स्वस्त्येतस्यै**=આ વાણીનું પણ કલ્યાણ.

૯૯।૧૧ **श्रीहेमचन्द्रप्रभवाद्**=શ્રીહેમચન્દ્રસૂરિએ રચેલ આ વીતરાગ-સ્તવથી.

૧૦૪।૧ **अनन्तविज्ञानम्**=આ શ્લોકના શરૂના બે ચરણોથી ચાર અતિશયોનાં સૂચન દ્વારાયે શ્રીવર્દ્ધમાનસ્વામીની સ્તુતિ ગ્રન્થકાર અત્ર કરે છે.

૧૦૪।૨ **स्पृहयालु रेव**=હે જિન! તારા અન્ય ગુણોને વિષે આ જન, મમતાવાલો છે, પણ કેવલ એક યથાર્થવાદને જ અવગાહન કરવાને તૈયાર થાઓ.

૧૦૫।૩ **न भावान्तरनेयरूपाः**=દ્રવ્ય ગુણ કર્મ સમવાય વિગેરે અન્ય પદાર્થોથી પ્રતિતિને પામી શકે તેમ નથી.

૧૦૫।૪ **प्रलापाः**=એકાન્તના આગ્રહપૂર્વકના પ્રલાપો.

૧૦૫।૫ **त्रितयं**=ધર્મ, ધર્મી અને તેનો સંબંધ.

૧૦૫।૬ **अत्वदीयैः**=તારા સિદ્ધાન્તોને નહિ માનનારાઓથી.

૧૦૫।૭ **अतत्त्ववादोपहताः**=તત્ત્વવાદની વિરૂદ્ધની પરિસ્થિતિને સ્વીકારવાથી પીડિત બનેલાઓ.

૧૦૫।૮ **मुनिरन्यदीयः**=તારાથી અન્યશાસનમાં રહેલ ગૌતમમુનિ.

૧૦૫।૯ **परेषाम्**=પોતાના પુત્રના નાશથી• રાજા બનવાની ઇચ્છા સમાન, તે પરમતવાલાઓનું આ મન્તવ્ય છે.

१०६।१० **परे**=પરશાસનમાં રહેલાઓ.

१०६।११ **भवत्परेषाम्**=આપનાથી જૂદો મત ધરાવનારાઓની.

१०६।१२ **अतावकानाम्**=હે જિન ! તારા શાસનથી રહિત લોકોની.

१०६।१३ **जडै र्न ग्रथितं**=જડપુરૂષોએ-સાંખ્યોએ પોતાનાં શાસ્ત્રોમાં પૂર્વાપર વિરોધપૂર્વકનું કેટલું નથી સ્વીકાર્યું ?

१०६।१४ **सुगतेन्द्रजालम्**=બુદ્ધની ઇન્દ્રજાળ.

१०६।१५ **परस्ते**=હે વીતરાગ ! તારા શાસનથી પર-ક્ષણિકવાદી બૌદ્ધ મહા સાહસિક છે.

१०६।१६ **तटस्तटादर्शिशकुन्तपोतन्यायात्**=સમુદ્રની મધ્યમાં રહેલા જહાજપર ઉડતું શકુન્તપક્ષી, કિનારાની શોધમાં થોડે દૂર નજર કરી, ગંભીર અને અપાર સાગરથી સુદૂર રહેલા કિનારાને નહિ જોવાથી પાછું તે જહાજપર આવી જાય છે, તે મુજબ.

१०७।१७ **असूपपादम्**=સુખપૂર્વક ન ઘટી શકે તે.

१०७।१८ **आदेशभेदोदितसप्तभङ्गम्**=વિકલાદેશ અને સકલાદેશ એ મૂજબના આદેશભેદથી પંડિતજનોને સમજી શકાય તેવી સાતભંગીઓની પ્રરૂપણા આપે દર્શાવી.

१०७।१९ **जडाः**=શ્રી જિને પ્રરૂપેલ અનેકાન્ત વ્યવસ્થાને નહિ સમજતા જડ-અબુધ લોકો કેવલ એકાન્તવાદથી હણાઇને પછડાય છે.

१०७।२० **विपश्चितां नाथ !** હે બુદ્ધિમાન જનોના પૂજનીય નાથ !

१०७।२१ **परै र्विलुप्तम्**=એકાન્તવાદને સ્વીકારનારા-જિનશાસનથી પર લોકો જગતના સમ્યગ્જ્ઞાન-દર્શન આદિ ભાવપ્રાણના લૂંટનારા બન્યા છે.

१०८।२२ **त्वमाऽऽस्थः**=દુર્નયમાર્ગનું આપે નિરાકરણ કરેલ છે.

१०८।२३ **यथा न दोषः**=અનન્ત સંખ્યાથી જે રીતિયે આપે છ જીવ નિકાયની પ્રરૂપણા કરી છે, તે તેવીજ રીતિયે નિર્દોષ છે.

१०८। २४ **समयस्तथा ते**=તારૂં શાસન નિષ્પક્ષપાત છે.

१०८।२५ **वहेम चन्द्रद्युतिपानतृष्णाम्**=એક રીતિયે સ્તુતિકાર શ્રી હેમચન્દ્રસૂરિશ્વરજીનું પોતાનું નામ પણ સમજાઇ જાય છે.

१०९।१ **आत्मरूपमर्हं**=આત્મસ્વરૂપ શ્રી વર્દ્ધમાનજિનને.

१०९।२ **शिशु र्न शोच्यः**=મોટા હાથીઓના માર્ગે જતું નાનું હાથીનું બાળક સ્ખલના પામે તો તે શોચનીય નથી.

१०९।३ **तुरङ्गशृङ्गाणि**=ઘોડાના શિંગડાઓને પેદા કરનારાઓ.

१०९।४ **कुमार्गग्लपिता**=પોતે કુમાર્ગમાં ડૂબ્યા છે.

१०९।५ **प्रादेशिकेभ्यः**=વસ્તુના અંશમાત્રને સ્વીકારનારા.

१०९।६ **पथ्ये**=સ્વાદુ, હિતકર, એવા પથ્યભોજનમાં.

११०।७ **त्वदागमा एव**=તારાં આગમો એજ.

११०।८ **परैः कथङ्कारम्**=પર વાદિઓથી કઇ રીતિયે.

११०।९ **अयं जनः**=જે આ લોક તારા શાસને સ્વીકારેલી બાબતોમાં વાદ કરે છે, યા શંકા રાખે છે.

११०।१० **न मोक्ष्यमाणा**=આપના શાસનથી આઘા રહેનારાઓ મરણ-પામીને એક દુનિયાથી મૂકાવા છતાંયે વાસ્તવિક મોક્ષને મેલવી શકતા નથી.

११०।११ **किमु संरभन्ते ?**=શું હરકરત પહોંચાડી શકશે કે ?

११०।१२ **अधिदैवतेषु**=પરવાદિઓના દેવતાઓને વિષે.

११०।१३ **समाधिमाध्यस्थ्ययुगाश्रितोऽसि** = અહિં. પાઠાન્તરમાં **समाधिमास्थाय युगाश्रितोऽसि** પણ છે.

१११।१४ **द्वयं द्वयस्य**=અપક્ષપાતપણાથી વિચારતાં તારા શાસન અને ઇતરશાસન એ બન્નેની બે વસ્તુઓ અનુપમ દેખાય છે.

१११।१५ **त्वत्किंकरः**=તારો સેવક હું.

१११।१६ **मनोभवेन**=કામ–વિષયાભિલાષથી.

१११।१७ **मनोऽनुरक्तम्**=કેવલ અન્ધરાગથી તારે વિષે હે વીતરાગ ! પંડિતોનુ મન રાગી નથી બન્યું.

११२।१८ **मत्सरिणो जनस्य**=તેવાઓ મત્સરી–ઇર્ષ્યાલુ લોકોની સરખી કોટિમાં આવે તેમ છે.

११२।१९ **अवघोषणां ब्रुवे**=ડીંડીમ વગાડવા પૂર્વક જાહેર કરૂં છું.

११२।२० **परेषु**=તારા શાસનથી પર રહેલાઓને વિષે, અંગત દ્વેષમાત્રથી અરૂચિ નથી.

११२।२१ **महेम चन्द्रांशुदृशावदात**=સ્તુતિકારનું નામ આમાં સમજી શકાય તેમ છે.

११२।२२ **भगवन् ! नमोऽस्तुते**=દોષોની કલુષિતતાથી પર આપ એકજ છો. તે કારણથી આપને નમસ્કાર.

॥ **द्वितीयः अध्यायः समाप्तः** ॥

तृतीयः अध्यायः

११३।१ **तम्मयमणाः**=તન્મય મનવાલા બનીને.

११३।२ **परउवयारिक्कपरे**=પારકાના ઉપકારમાં તત્પર.

११४।३ **उज्झाए**=શ્રી ઉપાધ્યાયને.

११४।४ **निरुत्तं**=નિરૂક્ત પૂર્વકથિત.

११५।५ **भत्तिभरनमिर**=ભક્તિના સમૂહથી નમી પડતા.

११५।६ **चंदुज्जलकेवलकित्तिपूर**=ચન્દ્રના જેવા ઉજ્વલ કેવલ-જ્ઞાનની કીર્તિના સમૂહથી.

११५।७ **सेवागयगयमयराय**=સેવાને સારૂ આવેલા નિર્મદ-અભિ-માન વિનાના રાજાઓ.

११५।८ **सायरसमसमयामयनिवास !**=સાગરની જેમ સમતાઅમૃ-તના નિવાસસ્થાન હે પ્રભો !

११५।९ **कासुज्जलसंजमसीललील !** કાસનાં પુષ્પની જેમ નિર્મલ એવા સંયમ અને શીલની લીલાવાળા પ્રભો !

११५।१० **भावलयअलंकिय !**=ભાવલય-મોક્ષપદથી અલંકૃત.

११६।११ **पढमिल्लपयमय !**=શ્રીસિદ્ધચક્રના નવપદોમાંના પ્રથમપદમય.

११६।१२ **असमतमतमतमोभरहरणिक्कपइव !**=અત્યન્ત અસમાન,

બહુજ વિસ્તારને પામેલા અન્ધકારને હરવાને સારૂ એક-અસામાન્ય પ્રદીપ-દીપ સમાન !

११६।१३ उदरद्दरीद्दरिअकेसरिकिसोर=શ્રી મરૂદેવા માતાના ઉદરરૂપ ગુફાને વિષે સ્થાન મેલવનાર બાલસિંહ !

१५६।१४ घोरभुयदंडखंडिय=ઘોર ભુજાદંડથી પ્રચંડ મોહને ખંડિત કરનાર.

११६।१५ दुरियमयगलमइंद !=હાથીની જેમ પાપસમૂહનો નાશ કરનાર સિંહ !

११६।१६ उत्तमतत्तकणगकलससरिससंठाण !=ઉત્તમ અને તપેલા સુવર્ણ કલશના સમાન સંસ્થાનવાલા !

११८।१७ चितावसहे=મન મન્દિરમાં.

११८।१८ तवेहागमियं निरासं=આશંસાવિના આગમિક-આગમકથિત આ તપને તપો.

११८।१९ समयासिअधारेणं=સમતારૂપી તીક્ષ્ણધારાવાલા ક્ષાન્તિરૂપ ખડ્ગથી.

११९।२० गरुअमयसिहरअट्ठयं=આઠ પ્રકારના મદસ્થાનરૂપી આઠ મહાન શિખરોવાલો.

११९।२१ मद्दविक्कवज्जेणं=માર્દવતા એજ એક વજ્રથી.

११९।२२ कोसुंभपयंगमंगसमरागो=કૌશુંભ પતંગ અને મજીઠસમાન રાગવાલા ત્રણેય પ્રકારના રાગો.

१३८।१ तत्तिसानाथ्यकारकः=સેવકલોકોની ચિન્તાઓથી : નાથવૃત્તિને કરનાર.

१३८।२ **भवन्तमुररीकृत्य**=આપને સ્વીકારીને.

१३८।३ **गलपादिकाम्**=ગલચીને પકડીને.

१३९।४ **वीतकल्मष!**=મલીનતાને જેમણે દૂર કરી છે.

१३९।५ **हास्यहेतिविलासाक्षमालाद्यैर्हीन !**=હાસ્ય, શસ્ત્રોનો વિલાસ, જપમાલા વિગેરેથી રહિત.

१४०।६ **आपन्नशरणे दीने**=તારા શરણુને પ્રાપ્ત કરનાર મુજસમા દીનને વિષે.

१४०।७ **सद्भक्तिनिर्ग्राह्य !**=શુભભકિતથી વશ્ય !

१४१।८ **त्वयाऽवधीरितो नाथ!**=હે જિન ! તારા દ્વારાયે ઉપેક્ષિત.

१४१।९ **साक्षाद्भूताऽन्यभावस्य**=જેણે સર્વ અન્યભાવોને સાક્ષાત્કૃત કર્યા છે,

१४१।१० **विदलत्कर्मकोशकम्**=નાશ પામી ચૂકયા છે, કર્મરૂપ કોશક જેનાં તેવું મારૂં ચિત્ત.

१४१।११ **मद्दोर्दण्डशिखण्डिकः**=મારી ભુજારૂપ શિખણ્ડિક–કલગી-વાલો.

१४२।१२ **अश्लीलाक्षरोल्लापजल्पाकः**=અસ્પષ્ટ અક્ષરોના ઉલ્લાપને કરનારો.

१४२।१४(३) **सूकरसंकाशं**=ભૂંડની જેમ

१४२।१५ **देव ! वारय**=હે દેવ ! તેને તું રોક.

१४३।१६ **कषायारातिवर्गेण**=દુશ્મનની જેમ કષાયના સમૂહથી

१४३।१७ **आन्तरो रिपुसंघातः**=અંદરનો શત્રુસમૂહ. કામ-ક્રોધાદિ શત્રુ વર્ગ.

१४३।१८।१९ **तवाऽऽयत्तो भवो घोर !**=હે નાથ ! સંસાર તારે આધીન છે.

१४३।२० **निर्गतिकोल्लापम्**=અભાગીના આલાપને.

१४४।१ **उत्स्वप्नायितं पुनः**=સ્વપ્નમાંથી ઉઠયાની જેમ વ્યર્થ.

१४४।२-३ **अघाटमपि कल्याणम्**=ઘડ્યાવિનાનું સુવર્ણ સારી રીતિયે ઘડેલા માટીના ઘડાથી જેમ પ્રશસ્ત છે.

१४४।४ **अनक्षरो लेखः**=અક્ષર પાડયા વિનાનો લેખ.

१४४।५ **यदैहिकम्**=આ લોક સંબન્ધી.

परिशिष्ट बीजुं–(२)

ग्रन्थना प्रथम अध्यायमां प्रकाशित थयेलां,
श्रीत्रिषष्टि–प्रथम पर्वनां श्री जिनस्तवोमांनां शेष रहेलां—

श्री* आदिनाथ जिन-स्तवः ।

असद्भूतान् गुणान् जल्पन्, जनः स्तौतीतरं जनम् ।
गुणान् सतोऽपि ते वक्तुमक्षमोऽहं स्तुवे कथम् ? ॥ १ ॥

तथापि हि जगन्नाथ !, करिष्यामि तव स्तुतिम् ।
न ददाति दरिद्रः किं ?, श्रीमतामप्युपायनम् ॥ २ ॥

युष्मात्पादैर्दृष्टमात्रैरन्यजन्मकृतान्यपि ।
गलन्त्येनांसि, शेफालीपुष्पाणीन्दुकरैरिव ॥ ३ ॥

दुश्चिकित्स्यमहामोहसन्निपातवतामपि ।
स्वामिन्! जयन्ति ते वाचोऽमृतौषधिरसोपमाः ॥ ४ ॥

चक्रवर्त्तिनि रंके वा, कारणं प्रीतिसम्पदाम् ।
समास्त्वदृष्टयो नाथ ! वार्षिक्य इव वृष्टयः ॥ ५ ॥

क्रूरकर्महिमग्रन्थिविद्रावणदिवाकरः ।
स्वामिन्नस्मादृशां पुण्यैरिमां विहरसे महीम् ॥ ६ ॥

शब्दानुशासनव्यापिसंज्ञासूत्रोपमा प्रभो !
जन्मव्ययध्रौव्यमयी, जयति त्रिपदी तव ॥ ७ ॥

---

*श्री भरत-सुन्दरीभ्यां विहितः,

यस्त्वां स्तौतीह भगवँस्तस्याऽप्येषोऽन्तिमो भवः ।
शुश्रूषते ध्यायति वा, यः पुनस्तस्य का कथा ? ॥ ८ ॥

---

१ *श्री ऋषभादितीर्थकृतां स्तवः ।

कल्याणैः पंचभिर्दत्तसुखाय श्वभ्रिणामपि ।
जगत्सुखकर ! नमस्तुभ्यं त्रिजगदीश्वर ! ॥ १ ॥

स्वामिन् ? विश्वजनीनेन त्वया विहरताऽन्वहम् ।
रविणेवाऽनुग्रहीतं, चराचरमिदं जगत् ॥ २ ॥

अप्यार्याणामनार्याणां, प्रीतये व्यहरँश्चिरम् ।
गतिः परोपकाराय, भवतः पवनस्य च ॥ ३ ॥

उपकर्तुमिहाऽन्येषां, व्यहार्षीर्भगवंश्चिरम्
मुक्तौ कस्योपकाराय, गतोऽसि परमेश्वर ? ॥ ४ ॥

लोकाग्रमद्य लोकाग्रं, भवता यदधिष्ठितम् ।
मर्त्यलोकोऽयमद्यैव, मर्त्यलोकस्त्वयोज्झितः ॥ ५ ॥

अद्याऽपि साक्षात् त्वमसि, तेषां भव्यशरीरिणाम् ।
विश्वानुगृहकरिणीं, देशनां ये स्मरन्ति ते ॥ ६ ॥

---

* श्रीऋषभप्रभोर्निर्वाणादनन्तरं श्रीभरतनरदेवेन अष्टापदाद्रौ विहितः

उपस्थमपि ये ध्यानं, त्वयि नाथ ! प्रयुञ्जते ।
प्रभो ! प्रत्यक्षमेवाऽसि तेषामपि महात्मनाम् ॥ ७ ॥

यथा संसारमत्याक्षीरशेषं परमेश्वर ! ।
निर्ममोऽपि तथा जातु, मा त्याक्षीर्मानसं मम ॥ ८ ॥

जयाऽजित ! जगन्नाथ ! कषायविजयाजित ! ।
विजयाकुक्षिमाणिक्य ! जितशत्रुनृपात्मज ! ॥ ९ ॥

जितारिसूनो ! श्रीसेनाकुक्षिसम्भव ! सम्भव ! ।
भवव्योमातिक्रमणप्रभाकर ! नमोऽस्तु ते ॥ १० ॥

सिद्धार्थापूर्वदिक्सूर्य ! संवरान्वयमंडन ! ।
विश्वाभिनन्दन ! विभो ! ऽभिनन्दन ! पुनिहि नः ॥ ११ ॥

भगवन् ! मंगलादेवीमेघमालैकमौक्तिक ! ।
मेघान्वयाऽवनीमेघ ! सुमते ! भवते नमः ॥ १२ ॥

स्वामिन् ! धरधराधीशसरित्पतिनिशाकर ! ।
सुसीमाजाह्नवीपद्म ! पद्मप्रभ ! नमोस्तुते ॥ १३ ॥

श्रीसुपार्श्वप्रभो ! पृथ्वीमलयावनिचन्दन ! ।
श्रीप्रतिष्ठकुलगृहपतिष्ठास्तम्भ ! पाहि माम् ॥ १४ ॥

महसेनान्वयनभश्चन्द्र ! चन्द्रप्रभ ! प्रभो ! ।
भगवन् ! लक्ष्मणाकुक्षिसरसीहंस ! रक्ष नः ॥ १५ ॥

श्रीरामानन्दनारामम‌हीकल्पमहीरुह !।
सुग्रीवसूनो ! सुविधे ! विधेहि शिवमाशु नः ॥ १६ ॥

नन्दादेवीहृदानन्द ! स्वामिन् ! दृढरथात्मज !।
जगदाह्लादशीतांशो ! श्रीशीतल ! मुदे भव ॥ १७ ॥

श्रीविष्णुदेवीतनय ! विष्णुराड्वंशमौक्तिक !।
निःश्रेयश्रीरमण ! श्रेयांस ! श्रेयसे भव ॥ १८ ॥

जयाविदुरभूरत्न ! वसुपूज्यनृपात्मज !।
वासुपूज्य ! जगत्पूज्य ! विश्राणय शिवश्रियम् ॥ १९ ॥

श्यामाशमीशमीगर्भे ! कृतवर्मनृपात्मज !।
भगवन् ! विमलस्वामिन् ! विमली कुरु मे मनः ॥ २० ॥

श्री सिंहसेनभूपालकुलमंगलदीपक !।
सुयशःस्वामिनीसूनोऽनन्तोऽनन्तं सुखं तनु ॥ २१ ॥

सुव्रताप्राग्गिरितटीभानो ! भानुनृपात्मज !।
श्री धर्मनाथ ! भगवन् ! धेहि धर्मे धियं मम ॥ २२ ॥

विश्वसेनकुलोत्तंसाऽचिरादेवीतनूद्भव !।
श्री शान्तिनाथो भगवन् ! भव नः कर्मशान्तये ॥ २३ ॥

सूरान्वयवियत्सूर ! श्रीशशीकुक्षिसम्भव !।
कुन्थुनाथ ! जगन्नाथ ! जयोन्मथितमन्मथ ! ॥ २४ ॥

देवीशरच्छ्रीकुमद ! सुदर्शननृपात्मज ! ।
अरनाथ ! वितर मे, भवोत्तरणवैभवम् ॥ २५ ॥

कुम्भाम्भोधिसुधाकुम्भ ! प्रभावत्यङ्गसम्भव ! ।
कर्मक्षयमहामल्ल ! मल्लिनाथ ! शिवं दिश ॥ २६ ॥

सुमित्रहिमवत्पद्महृद ! पद्मावतीसुत ! ।
मुनिसुव्रततीर्थेश ! नमस्ते परमेश्वर ! ॥ २७ ॥

वप्रावज्राकरमहीवज्र ! श्रीविजयात्मज ! ।
जगन्नमस्यपादाब्ज ! नमस्तुभ्यं नमिप्रभो ! ॥ २८ ॥

शिवगामिन् ! शिवासूनो ! समुद्रानन्दचन्द्रमः ।
अरिष्टनेमे ! भगवन् ! नमः कारुणिकाय ते ॥ २९ ॥

अश्वसेनावनीपालकुलचूडामणे ! प्रभो ! ।
वामासूनो ! नमस्तुभ्यं, श्रीमत्पार्श्वजिनेश्वर ! ॥ ३० ॥

सिद्धिसम्प्राप्तिसिद्धार्थ ! सिद्धार्थनृपनन्दन !
त्रिशलाहृदयाश्वास ! श्री वीर ! भवते नमः ॥ ३१ ॥

નથી સ્વાધ્યાય સમું-

नत्थि : सज्झाय समं : तवोकम्मं

બીજું તપકર્મ જગમાં;

स्वाध्यायधर्मनी महत्ता

बारसविहम्मि वि तवे सब्भिंतरबाहिरे कुसलदिट्ठे ।
नवि अत्थि नवि अ होई सज्झायसमं तवोकम्मं ॥

—કુશલ પુરુષોએ ફરમાવેલ બાહ્ય અને આભ્યન્તર, એ રીતિએ બારેય પ્રકારના તપને વિષે સ્વાધ્યાયસમું તપકર્મ કોઇ છે નહિ અને થનાર નથી.

કારણ કે :—

सज्झायेण पसत्थं झाणं जाणई अ सव्वपरमत्थं ।
सज्झाये वट्टन्तो खणे खणे जाई वेरग्गं ॥

—સ્વાધ્યાયથી નિર્મલ ધ્યાન ઉપજે છે, સ્વાધ્યાયના યોગે સર્વ પરમ રહસ્યોનું જ્ઞાન થાય છે, અને સ્વાધ્યાયમાં સદાકાલ રમનાર ભાવુક આત્મા ક્ષણે ક્ષણે વૈરાગ્યભાવમાં વૃદ્ધિ પામે છે.